# PATRONS.

RULERS

1—His Highness Maharajadhiraj Sir George Jiwaji Rao Scindia Alijah Bahadur G C I E Gwalior

2—Late Colonel His Highness Maharao Sir Ummed Singh Bahadur G C S I, G C. I E., G B E., L-L D., Kotah.

3—Lieutenant His Highness Maharaja Krishna Kumar Singh Bahadur Bhawnagar.

4—Lieutenant colonel His Highness Maharaja Jam Sahab Sir Digvijay Singh Bahadur K C S I, Nawanagar

5—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Lokendra Sir Govind Singh Bahadur G C S I., K. C S. I., Datia

6—Lieutenant His Highness Maharaj Rana Rajendra Singh Bahadur Jhalawar

7—Captain His Highness Maharaja Mahendra Sir Yadvendra Singh Bahadur K. C S I., K. C I. E., Panna

8—Rai Bahadur Devi Singh Diwan Rajgarh State, Rajgarh.

BANKERS

9—Sir Lala Padampatiji Singhania, Cawnpore

10—Seth Magni Ramji Ram Kumarji Bangar, Didwana.

11—Rai Bahadur Rajya Bhushan Danbir Seth Hiralalji Kashliwal Indore

12—Seth Sohanlalji Shubhakaranji Ratanlalji Dugar Fatehpur

13—Seth Chunilal Bhaichand Mehta, Bombay.

# पूर्णाहुति

जगन्नियन्ता की असीम कृपा से वनौषधि-चन्द्रोदय का विशालकार्य इस दसवें भाग के साथ ही पूर्ण सफलता के साथ समाप्त होता है। जिस दिन हमने अपनी दुर्बल शक्तियों के सहारे इस विस्तृत कार्य की नौका को मझधार में छोड़ा थी उस समय हमे स्वप्न में भी यह खयाल न था कि इस क्षुद्र नौका को इतने बड़े-बड़े तूफानों का सामना करना पड़ेगा। कितनी ही बार हमको यह आशंका हुई कि अब इस नौका का पार लगना असम्भव है। विशेषतया इस महायुद्ध के विश्वसंकट का जो प्रभाव कागज के बाजार पर पड़ा वह इस नौका के मार्ग में सबसे बड़ा तूफान था। इस ग्रन्थ का पाचवा भाग प्रकाशित होने तक तो कागज फिर भी सस्ते महँगे भाव में मिलता रहा, मगर उसके पश्चात् तो कागज की समस्या महान् विकट हो गई और हमको इसका छठा और सातवा भाग हाथ के बने कागज पर छापना पड़ा। उसके पश्चात् कठिनाइयाँ और भी वढती गई, मगर परमात्मा की प्रेरणा से और पाठकों की सद्‌भावना से अन्त में यह नौका पार लगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन और संग्रह कैसा हुआ हैं इसके सम्बन्ध में हमें कुछ कहना नही है, इसका निर्णय करना विद्वान पाठकों का काम है। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि हमने परिश्रम करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी है। हरएक वनस्पति के सम्बन्ध में अच्छे से अच्छा, वैज्ञानिक और अनुभूत विवेचन जितना भी हमको उपलब्ध हो सका हमने इस ग्रन्थ में दे दिया है। हमने इस बात का भी पूरा खयाल रक्खा है कि देशी चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थियों को यह ग्रन्थ उत्तम से उत्तम मटेरिया मेडिका और वानस्पतिक विश्वकोष का काम दे सके। इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक निघण्टुओं, यूनानी अदवियाओं और गवर्नमेंट आफ इण्डिया के वानस्पतिक विभाग के द्वारा खोज की हुई प्राय तमाम वनस्पतियों, खनिज द्रव्यों विष, उपविषों तथा मासवर्ग को छोड़कर और सब चीजों का पूरा विवेचन देने का प्रयत्न किया है। जाने बूझे किसी भी चीज को छोड़ी नहीं गई है और अनजान में तो मनुष्य से भूल होने की पग-पग पर सम्भावना रहती है, उसकी जिम्मेदारी ता हम ले ही कैसे सकते हैं। इस प्रकार करीब ढाई हजार वनस्पतियों और दूसरी वस्तुओं का विवेचन इस ग्रन्थ में आ गया है।

कई स्थान ऐसे पड़ गये हैं जहाँ हमारे प्राचीन आयुर्वेदिक मत और आधुनिक रसायन शास्त्र की कसौटी पर सिद्ध हुए मत में बिलकुल विरोध पड़ गया है। जैसे शिलाजीत के सम्बन्ध में, ऐसे स्थानों पर हमने दोनों मतों का यथाक्रम विशद विवेचन कर दिया है। दृष्टिदोष से दस पन्द्रह वनस्पतियों का विवेचन दो-दो बार छप गया है इसके लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

हमको इस बात का बड़ा हर्ष है कि ग्रन्थ के प्रारम्भ से ही सारे भारत के वैद्य समाज ने इस ग्रथका हृदय से स्वागत किया, सैकड़ों उदार हृदय सज्जनों ने हमारे पास उत्साह वर्द्धक पत्र भेजे और कागज के भयकर अभाव से तग आकर लाचारी की हालत में जब हमने छठवें भाग से इसका आकार ३८ फार्म की जगह २५ फार्म कर दिया तब भी उन्होंने हमारी इस यातना को प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लिया। इन सब बातों के लिए हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। यहा पर हम यह बात अवश्य बतला देना चाहते हैं कि आकार को कम कर देने पर भी हमने वनस्पतियों की सख्या या उनके वर्णन में बिलकुल कमी नहीं की है बल्कि यदि पाठक ध्यान के साथ देखेंगे तो पहले के पाँच भागों की अपेक्षा इन अन्त के पाँच भागों

की विषय-विवेचना अपेक्षाकृत उत्तम ही पावेंगे। पर हा, स्थान की कमी से ग्रन्थ को अन्त में हम जो पाच सात प्रकार की बड़ी-बड़ी और बहुत उपयोगी विषय सूचिया एक पूरे भाग में देना चाहते थे वे नहीं दे सके और सिर्फ एक ही बड़ी विषय सूची देकर हमें सन्तोष करना पड़ा।

बहुत से सज्जनों ने इस ग्रन्थ में मान्स-द्रव्यों का विवेचन न करने के सम्बन्ध में हमसे भाति-भाति के प्रश्न पूछे हैं। हम चाहते थे कि उन सब प्रश्नों का विस्तार के साथ इस आखिरी निवेदन में उत्तर दिया जाता मगर स्थान की इतनी कमी है कि हम यहा इस विषय को विस्तार नहीं देना चाहते। हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि यह विषय हमारी आत्मा को अप्रिय था, मास द्रव्यों के प्रचार या उनकी जानकारी के सम्बन्ध में हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का भाग नहीं लेना चाहते। हमारा अपना दृढ विश्वास है कि मान्स द्रव्यों से निर्लिप्त रहकर भी मनुष्य स्वस्थ रह सकता है, रोगों पर विजय प्राप्त कर सकता है, दीर्घायु प्राप्त कर सकता है और अपनी जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति को सुरक्षित रख सकता है। ऐसी स्थिति में अपनी स्वादलिप्सा, अपनी काम लिप्सा और दूसरी औषधि प्रयोग के लिए निरीह पशुओं का वध करने में हम तो कोई नैतिकता का आदर्श नहीं देखते और फिर हम इसको तर्क का विषय भी नहीं समझते, यह एक शुद्ध भावुकता का विषय है। हम यह मानते हैं कि आज दुनिया की एक बहुत बड़ी जनसंख्या मासभक्षी है और निरामिष भोजी उनके मुकाबिले में बहुत कम हैं मगर इस प्रकार की कोई भी दलील हमारी भावुकता पर कोई असर नहीं डाल सकती। शुद्ध भावुकता तो सारी दुनिया के विरोध में भी जीवित रह सकती है। यही कारण है कि और सब प्रकार के द्रव्यों का विवेचन करके भी हम इस ग्रन्थ में मास द्रव्यों का समावेश करने में असमर्थ रहे।

अन्त में हम उन सैकड़ों ग्रन्थकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं जिनके ग्रन्थों से फूल चुन-चुनकर हमने यह माला तैय्यार की है। उनके ग्रन्थों ने हमारे अन्धकार पूर्ण भाग को प्रकाशित किया है अगर उनके ग्रन्थ हमारे सामने न होते तो हम कदापि इस ग्रन्थ को तैयार करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। विशेष कर इण्डियन मेडिसिनिल प्लाटस के रचयिता स्व० मेजर बी० डी० बसु और लेफ्टिनेण्ट कर्नल कीर्त्तिकर, लेफ्टिनेण्ट कर्नल आर० एन० चोपरा, जगलनी जड़ी बूटी के लेखक वैद्यराज शामलदास गौर, औषधि-संग्रह के रचयिता स्व० डा० वामन गणेश देसाई, वनस्पति शास्त्र के रचयिता स्व० जयकृष्ण इन्द्रजी, शालिग्राम निघण्टु के कर्त्ता शालिग्रामजी वैश्य इत्यादि महान् लेखकों के प्रति तो हम हमारी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। इनके ग्रन्थों से तो हमें बहुत बहुमूल्य प्रकाश प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त पहले भाग में जिन सहायक ग्रन्थों की सूची हमने प्रकाशित की है उनके लेखकों के प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। पारद के प्रकरण में हमें स्वामी हरिशरणानन्दजी के कूपी पक्व रस विज्ञान तथा स्व० श्यामसुन्दराचार्य्य जी के रसायनसार से, नीम और मधु के प्रकरण में श्री केदारनाथजी पाठक की नीम और मधु के उपयोग नामक पुस्तकों से, मट्ठे के प्रकरण में डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय की "मट्ठा के उपयोग" नामक पुस्तकों से सहायता मिली है। इन सब लेखकों को तथा और भी जिन लेखकों के ग्रन्थों या निबन्धों से हमें सहायता मिली है उन सबको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अन्त में हम फिर से हमारे सब पाठकों को धन्यवाद देकर इस विशाल कार्य्य को समाप्त करते हैं।

अक्षय तृतीया,
२००१ वि०

विनीत—
**चन्द्रराज भण्डारी**

# विषय—सूची नं० १

## ( हिन्दी नाम )

## विषय-सूची नं० २

### ( संस्कृत नाम )



---

## विषय-सूची नं० ३

### ( मराठी नाम )

---

# विषय-सूची नं० ४

## ( गुजराती नाम )



---

# विषय-सूची नं० ५

## ( बङ्गला नाम )



# विषय-सूची नं० ६

## ( रोगानुक्रम से )

विशेष प्रभावशाली औषधियों के आगे* ऐसे फूल लगा दिये गये हैं ।

# INDEX 6

*( Latin Names )*

# बनौषधि चन्द्रोदय

( दसवाँ भाग )

# बनौषधि चन्द्रोदय

## ( दसवाँ भाग )

## सहजना कड़वा

*नाम:—*

संस्कृत—शुभाञ्जन, सिंह, गर्भपातक, रक्तशिग्रु, तिक्त शिग्रु, इत्यादि । हिन्दी—सहजना कडुवा, सैंग कडवी, सहजना जङ्गली । बम्बई—सेंजना । मराठी—मुआ, रानशेगटा । काठियावाड–डुगराउ सरगवो, कडुवो सरगवो । राजपूताना—हेगू, सिगोरा, सुजना । तामील—कट्टू मुरुंगाई । तैलगू—कडु मुनागा, लेटिन–moringa Concanensis ( मोरिंगा कोंकेनेनसिस ) ।

वर्णन—कडवे सहजने के वृक्ष मीठे सहजने के वृक्ष की अपेक्षा अधिक बडे और मोटे होते हैं । इनकी छाल कुछ अधिक सफेदी लिए हुए और बूच ( काग ) की लकडी के समान पोची होती है । इसके पत्ते मीठे सहजने के पत्तों से बडे और फूल उससे अधिक सफेद तथा पीली और लाल छाया लिए हुए होते हैं । इसकी फली छोटी, तिधारी और कडवी होती है ।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से कडवा सहजना अत्यन्त बलवर्द्धक, धातु परिवर्त्तक, अग्निवर्द्धक, मृदुविरेचक और सूजन वात, पित्त, तथा दमे को दूर करनेवाला होता है । इसके गुण धर्म मीठे सहजने के समान ही होते हैं ।

मीठे सहजने की अपेक्षा यह विशेष गरम और विदाही होता है ।

महन्त सुखरामदास अपने बूटी प्रचार वैद्यक में लिखते हैं कि—यह हर प्रकार के वायु ( वात ) रोगों की दवा है । इसकी अन्तर छाल को पाँच सेर पानी में डाल कर औटाना चाहिए, जब आधा पानी रह जाय, तब उस काढ़े को छान लेना चाहिए । फिर उस काढ़े में एक सेर कडवा तेल डाल कर फिर

औटाना चाहिए, जब पानी का थोड़ा सा भाग शेष रह जाय तब उसे उतार कर ऊपर २ से तेल निकाल लेना चाहिए। इस तैल की मालिश करने से सब प्रकार के वात रोग जैसे गठिया, सन्धिवात इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

---

## सहसा

नामः—

बलूचिस्तान—सहसा। लेटिन—Convolvulus Spinosus ( कनवोल्वलस स्पिनोसस )।

वर्णन—यह वनस्पति बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति एक जोरदार विरेचक वस्तु होती है।

---

## सरपानो चारो

नामः—

गुजराती—सरपानो चारो,आस्मानी गल्गोटो। लेटिन–Lavandula Hipinnata (लेवेण्डुला हिप्पीनेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति खानदेश, कोकण, काठियावाड़, आबू पहाड़, जबलपुर और छोटा नागपुर मे पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति सर्पविष को दूर करने वाली मानी जाती है। इसकी जड़ को पानी के साथ पीस कर जहरीले जानवरों द्वारा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है। साप से काटे हुए ऐसे व्यक्तियों को जिनको बहुत नींद और बेहोशी आ रही हो उनको नींद नहीं आने देने के लिए इसके पत्तों का चूर्ण सुंघाया जाता है।

---

## सदाब

नामः—

संस्कृत—गुच्छ पत्र, पीतपुष्पा, सदापहा, सर्पदन्ष्ट्रा सोमलता, विषापहा। हिन्दी—सदाब, सुदाब।

पिसमारुम । बङ्गला—इस्मुल, इस्पन्द । गुजराती—सताप । मराठी-सताप । बम्बई—सताप । पंजाब—सुदाब, कटमाल । तामील—अरुवदन । तैलगू-सदाप । फ़ारसी—सुदाब । उर्दू-सुदाब । अरबी—फैजन । अंग्रेजी—Garden Rue ( गार्डनरू ) लेटिन-Ruta Graveolens ( रूटा ग्रेविओलेन्स ) ।

वर्णन—यह एक छोटी क्षुपजाति की दुर्गन्धयुक्त बनस्पति होती है जो बगीचों में लगाई जाती है। हिन्दुस्तान की आबहवा में यह वनस्पति अच्छी नहीं होती। इसलिए ईरान से सूखे हुए रूप में यह बनस्पति हिन्दुस्तान में आकर बिकती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सुदाब का पौधा कडवा, मृदुविरेचक, शरीर में गरमी पहुँचानेवाला और कफ तथा वात को नष्ट करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी तीन जातियाँ होती हैं, बागी, जङ्गली और पहाडी। इसका पौधा पौष्टिक, पाचक, मूत्रल, ऋतुश्राव नियामक, गर्भघातक, कामशक्ति नाशक, शरीर में गर्मी पहुँचानेवाला, मानसिकशक्ति को बढ़ानेवाला और पुरातन प्रमेह में लाभदायक होता है।

सुदाब अग्निदीपक, वातनाशक, उत्तेजक, कृमिनाशक, सकोचविकास प्रतिबन्धक, पसीना लानेवाला, मज्जातंतुओं को उत्तेजना देनेवाला, मूत्रल और आर्त्तव प्रवर्त्तक होता है। इसको त्वचा पर लगान से यह जलन पैदा करता है और पेट में लेने से भीतरी दाह पैदा करता है। सुदाब का तेल नाडी की गति को बढाता है लेकिन उसके दबाव को कम करता है। इसके सूखे हुए पौधे की फ़ांट देने से नाडी की गति धीमी हो जाती है। बडी मात्रा में इसको देने से नाडी अशक्त हो जाती है। सुदाब का उत्तेजक धर्म त्वचा मज्जातन्तु और गर्भाशय पर विशेषरूप से दिखलाई देता है। इसको लेने से पसीना बहुत होता है, विचार करने की शक्ति बढती है, गर्भाशय पर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। गर्भवती स्त्रियों को सुदाब देने से उन्हें बारबार पेशाब होता है, कमर में दर्द होने लगता है और रोज २ देते रहने से करीब दस दिन में पीडा शुरू होकर गर्भपात हो जाता है। इसलिए गर्भवती स्त्रियों पर इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। इस बनस्पति से गर्भपात हो ज़ाने के उदाहरण कई बार देखने में आते हैं। इसको बडी मात्रा में लेने से बहुत कष्टपूर्ण वमन होती है, बहुत थकावट आ जाती है, विचारशक्ति कमजोर हो जाती है, दृष्टि में धुँधलापन आ जाता है, नाडी अशक्त होकर रुक २ कर चलने लगती है, हाथ पाँव ठण्डे हो जाते हैं और शरीर में आक्षेप होने लगता है। मतलब यह कि अधिक मात्रा में यह बनस्पति एक घातक विष का काम करती है। इसकी हरी और सूखी वनस्पति की क्रिया में कुछ अन्तर रहता है।

अगर बुद्धिमानी के साथ उपयोग किया जाय तो सुदाब एक उत्तम और प्रभावशाली वस्तु है। स्त्रियों और बच्चों के रोगों में यह विशेषरूप से काम में आती है। इसको ज्वर में देने से पसीना होता है, पेशाब अधिक उतरता है, नाडी की चाल धीमी होती है और रोगी को उत्तेजना मिलती है, ज्वर में इसकी फाट बनाकर देते हैं।

जाता है। निस्सन्देह इस वनस्पति में आक्षेप निवारक और कफ निस्सारक धर्म बहुत प्रभावशाली रूप में रहते हैं। मैंने इस वनस्पति को बच्चों के जुकाम और तीव्र ब्रोंक्राइटीज में बहुत उपयोगी पाया।

---

# सागवान

*नामः—*

संस्कृत—शाक, क्रकचपत्र, श्रेष्ठकाष्ठ, अर्जुनोपम, शाकतरु इत्यादि। हिन्दी—सागवान, सेगोन, सागी। बङ्गला—सेगुन। मराठी—सागवान, साग। गुजराती—शाग। पंजाब—सागुन, सागवान। तामील—सागम, तेक्कु। तेलगू—टेकु। उर्दू—सागुन। फारसी—साज। अंग्रेजी—Teak। लेटिन—Tectona Grandis (टिक्टोना ग्रेण्डिस)।

वर्णन—सागवान के वृक्ष भारतवर्ष के प्रधान २ पहाड़ों में सब जगह होते हैं। इसकी इमारती लकडी सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे और एकदम सीधे होते हैं। इसके पत्ते बहुत बडे २ करीब डेढ फुट लम्बे और इतने ही चौडे होते हैं। इसकी लकडी की दरारों में एक प्रकार का सफेद क्षार जम जाता है वह चूने की जगह खाने के काम में आता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सागवान कसैला, शीतल, रक्तपित्त नाशक, गर्भ को स्थिर करनेवाला तथा वात-पित्त, बवासीर, कोढ़ और अतिसार को दूर करनेवाला होता है। इसके फूल कड़वे, कसैले, विशद, रूखे, हलके, वात को कुपित करनेवाले तथा कफ पित्त और प्रमेह को दूर करनेवाले होते हैं। इसकी छाल मधुर रूखी, कसैली और कफनाशक होती है।

इसकी जड़ मूत्र की कमी (Anuria) और मूत्र की रुकावट को दूर करने के लिए दी जाती है। इसकी लकड़ी कसैली, शीतल, मृदुविरेचक, गर्भवती के गर्भाशय के लिए उपशामक तथा पित्त-विकार, बवासीर, धवलरोग और अतिसार में लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी लकडी खराब स्वादवाली और खराब गन्धवाली होती है। यह मस्तकशूल, पित्तविकार और यकृत के निचले भाग में होनेवाले जलनयुक्त शूल को दूर करती है। प्यास को बुझाती है, कृमियों को नष्ट करती है, कफ निस्सारक होती है। इसकी राख सूजी हुई आँख की पलकों पर लेप करने के काम में ली जाती है। इसके फूलों से निकाला हुआ तेल बालों को बढाता है और खुजली में लाभ पहुँचाता है।

डाक्टर देसाई के मत से सागवान के फूल और बीज मूत्रल होते हैं, इसके बीजों का तेल केशवर्द्धक और खुजलीनाशक होता है, इसके पत्ते पित्तशामक, रक्तस्रावरोधक और छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन करनेवाले होते हैं। इसकी छाल पित्तशामक, कुछ स्तम्भक और सूजन तथा कृमियों को नष्ट करने-वाली होती है।

मूत्र के रुक जाने की हालत में इसके फूलों को पानी में बाफकर पेडू पर बांधते हैं और इसकी फांट बनाकर पिलाते हैं। इससे रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसके बीजों का तेल चर्मरोगों पर खुजली को कम करने के लिए लगाया जाता है। इस तेल को रोज बालों में लगाने से बाल काले, लम्बे और मुला-यम हो जाते हैं। गर्मी या पित्त की वजह से सिर में दर्द हो रहा हो, अथवा शरीर के किसी भाग में सूजन आ रही हो तो इसकी छाल का लेप करने से बहुत लाभ होता है। पित्तप्रकोप से और अपचन रोग में इसकी छाल का चूर्ण ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में दिया जाता है।

उपयोगः—

*श्वेतप्रदर*—सागवान की छाल का हिम बनाकर पिलाने से श्वेतप्रदर मे लाभ होता है।

*मस्तक पीडा*—इसकी लकडी को घिसकर लेप करने से पित्त की मस्तक पीडा मिटती है।

*पित्त की सूजन*—इसकी लकडी को घिसकर लेप करने से पित्त की सूजन उतरती है।

*आँख के पपुटों की सूजन*—इसकी लकडी के कोयले को पोस्त के पानी में बुझाकर पीसकर लेप करने से आँख के पपुटों की सूजन उतरती है।

*अतिसार*—इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से अतिसार मिटता है।

*खुजली*—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से खुजली मिटती है।

*दाहयुक्त सूजन*—इसकी लकडी को नल में घिसकर लगाने से भिलावे के तेल अथवा काजू के छिलके के तेल से पैदा हुई दाहयुक्त सूजन उतर जाती है।

*मूत्रावरोध*—इसके फल को पीसकर पुल्टिस बनाकर पेडू पर बांधने से मूत्र फौरन उतर जाता है।

---

## साटर

*नाम*—

उर्दू—साटर। लेटिन—Zataria multiflora ( झेटेरिया मुल्टिफ्लोरा )।

वर्णन—यह एक बहुत छोटी जाति की बहुशाखी वनस्पति होती है। इसके पत्ते भी बहुत छोटे छोटे होते है। यह वनस्पति बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

यह वनस्पति सुगन्धित, उत्तेजक, पसीना लाने वाली और उदरशूल को दूर करने वाली होती है।

---

# सादड़ा

*नामः—*

संस्कृत-साराद्रु, साजडा, धारा फल, श्याम सारका, वनज वृक्षा। हिन्दी—सादडा, ऐन, असन, साज, सैन। गुजराती—एन, सादडा, साजडियो। बंगला—असन, पियासाल। मराठी-ऐन, सादडा, साज। अंग्रेजी—Black Murdah (ब्लेक मुरदा) लेटिन—Terminalia Tomentosa (टर्मिनेलिया टोमेनटोसा)।

वर्णन—यह अर्जुन के वर्ग का अर्जुन वृक्ष के समान ही एक बडी जाति का वृक्ष होता है। इसके फल, फूल, पत्ते सब अर्जुन वृक्ष के समान ही होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सादडा कडुवा और रक्तस्राव रोधक होता है। यह व्रण, वात, खासी, शरीर के किसी भी हिस्से से खून का बहना तथा हड्डी का टूटना इन सब रोगों में लाभ पहुँचाता है। इसका काढ़ा बना कर व्रणों के ऊपर लगाया जाता है। इसकी छाल में मूत्रल और हृदय को शक्ति देने वाले पदार्थ रहते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी राख सर्पविष की चिकित्सा में काम आती है मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्पविष की चिकित्सा में यह वनस्पति या इसकी राख निरुपयोगी है।

---

# स्याह चोब

*नामः—*

फ़ारसी-स्याह चोब। लेटिन-Cotoneaster Nummularia (कोटोनेस्टर न्यूमूलेरिया)।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी तिब्बत और कश्मीर में छ हजार फीट से लेकर दस हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह कफनिस्सारक अग्निवर्द्धक और मृदुविरेचक होती है।

---

# सालम मिश्री

*नामः—*

संस्कृत—मुञ्जातक, बीजगन्ध, सुरपेय, पीयूषोत्थ, द्रुत फला इत्यादि। हिन्दी-सालम मिश्री। गुजराती—

सालम । मराठी—सलेप । पजाब-सालिब मिश्री । ईरान-सग मिश्री । लेटिन—Orchis Latifolia ( आर्चिस लेटिफोलिया ) ।

वर्णन—यह एक क्षुद्र जाति का वनस्पति होती है । यह नैपाल, काश्मीर, अफगानिस्तान और ईरान में पैदा होती है । इस वनस्पति का कन्द सालममिश्री कहलाता है । इसकी चार पाच जातियाँ होती हैं । (१) सालम पजा (Orchis Latifolia) इसका कन्द आदमी के पजे के अकार का होता है । (२) सालम लहसनिया या अबुशाहरी ( Orchis Lexiflora ) इसके कन्द का आकार लहसन की गठान की तरह होता है । ( ३ ) सालम बादशाही उर्फ वसरा ( Orchis Mascula ) इसके चपटे टुकड़े होते हैं । ( ४ ) सालम लाहौरी ( Eulophia Campestris ) और ( ५ ) सालम मद्रासी, यह नीलगिरि पहाड़ पर पैदा होती है और उटक मण्ड में बिकती है । इसका कन्द छोटा होता है और इसका आकार भी दूसरे प्रकार का होता है । लहसनिया सालम का कन्द १ से १॥ इंच तक लम्बा, गूगला, गोंद की तरह तथा बहुत चीठा होता है ।

बाजार में नकली सालम भी बहुत बिकती है जो आलू के आटे तथा गोंद को मिलाकर बनाई जाती है । असली सालम बहुत चीठा और सख्त होता है । यह बहुत कठिनाई से कूटने में आता है । इसमें किसी प्रकार की गन्ध और स्वाद नहीं होता ।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सालम मिश्री अग्निदीपक, शुक्रजनक, बलकारक, रक्तशोधक, क्षय में हितकारी, कामोद्दीपक, रसायन, अत्यन्त वीर्य-वर्द्धक, अवस्था स्थापक और पौष्टिक होती है ।

सालम मिश्री यह एक अत्यन्त पौष्टिक वस्तु होती है। इसका सिर्फ एक तोला चूर्ण प्रौढ मनुष्य के लिए चौबीस घण्टे तक पूरी खुराक का काम दे सकता है । इतनी थोडी मात्रा में मनुष्य की जीवन रक्षा करने-वाला कोई दूसरा अन्न नहीं होता । इसी से कई लोग अष्टवर्ग में वर्णित जीवक इसी को मानते हैं । इस औषधि में मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं के लिए उत्तेजक, सग्राहक, पौष्टिक और स्तम्भक धर्म भी रहते हैं। मतलब यह कि सालम जीवनी शक्तिवर्द्धक, कामोद्दीपक और अवस्था स्थापक होता है । ऊपर वर्णित की हुई सालम की सभी जातियों में ये गुण कम अधिक मात्रा में रहते हैं मगर इन सब में सालम पंजा सर्वो-त्कृष्ट होती है और मद्रासी तथा लहसनिया सालम कनिष्ट दर्जे की होती हैं।

पाचननलिका के दाह युक्त रोगों में सालम बहुत लाभदायक होती है । इससे कफ की कमी होती है, और दुर्बलता दूर होती है । सालम पचने में हलकी होती है और इसका सग्राहक धर्म उत्तम और स्पष्ट होता है । अतिसार, आँव, गर्भावस्था में लगने वाले दस्त और अपचन रोग में यह उत्तम वस्तु है । इन रोगों में इसको द्राक्ष के साथ देते हैं । कफ रोगों में सालम को बकरी के दूध के साथ देने से कफ की कमी हो जाती है ।

मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं में अधिक दिमागी काम करने की वजह से कभी कभी बहुत थकावट आ

जाती है और उसकी क्रिया में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में सालम का उपयोग करने से मस्तिष्क को क्रिया सुव्यवस्थित हो जाती है। कोमल प्रकृति की स्त्रियों में प्रसूतिकाल के पश्चात्, अथवा, अतिशय अभ्यास और अतिशय मैथुन से जो थकावट पैदा हो जाती है उसमें भी सालम बहुत अच्छा काम करती है।

*रासायनिक विश्लेषण*—सालम के अन्दर ४८ प्रतिशत एक प्रकार का गोन्द ( बोल ) रहता है। पुराने और अधिक समय के कन्द में यह नहीं मिलता, मगर बाजू के छोटे और कोमल कन्दों में यह काफी तादाद में रहता है। इसको खारे पानी में डालने से पानी का खारापन नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ आटा, शक्कर, मांसवर्द्धक द्रव्य और ताजी हालत में एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है। इसकी राख २ प्रतिशत पडती है और उस राख में यवक्षार, फास्फेट्स, क्लोराइड आफ पोटासियम और केलशियम पाये जाते हैं।

बनावटें—

*कामोद्दीपक चूर्ण*—सालम मिश्री, तोदरी सफेद, कौंच के बीजों की मगज, इमली के बीजों की मगज, तालमखाना, सरवाली के बीज, सफेद मूसली, काली मूसली, सेमर मूसली, बहमन सफेद, बहमन लाल, शतावर, बबूल का गोंद, बबूल की कच्ची या सूखी फली, ढाक की नर्म कली, इन सब चीजों को समान भाग लेकर बारीक पीस लेना चाहिए, फिर सारे चूर्ण का जितना वजन हो उतनी ही मिश्री मिलाकर बोतल में भर लेना चाहिए।

इस चूर्ण को एक तोले की मात्रा में सबेरे शाम मिश्री मिले हुए गाय के दूध के साथ सेवन करना चाहिए। कुछ दिनों तक लगातार इसका सेवन करने से नये और पुराने प्रमेह, कामशक्ति की कमजोरी, शीघ्रपतन, सिर का दर्द, कमर का दर्द इत्यादि रोग नष्ट होते है। पुरुष की स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति बढ़ती है। इस चूर्ण को कम से कम चालीस दिन तक सेवन करना चाहिए और सेवन करते समय स्त्री प्रसग, खटाई तथा तेल इत्यादि गर्म वस्तुओं से परहेज करना चाहिए।

*सालम पाक*—सालम पंजा १० तोले, सफेद मूसली, विदारी कन्द, चोबचीनी, गोखरू, केंवच के बीज, तालमखाना, शतावरी, खरैंटी के बीज, गगेरन की जड की छाल, सेमर मूसली और आँवला, ये सब चीजें पाँच-पाँच तोला लेकर सबका महीन चूर्ण करके पाँच सेर गाय के दूध के साथ सबका खोवा बनाकर उस खोवे को घी में भून लेना चाहिए। फिर वंशलोचन, इलायची, पींपर, पीपला मूल, जायफल, जावित्री, अकलकरा ये सब चीजें ढाई ढाई तोला, गिलोयसत्व २ तोला, प्रवाल पिष्ठी २ तोला, अभ्रक भस्म ६ माशा, कान्तिसार ६ माशा, बग भस्म ६ माशा, बादाम की मगज २० तोला, पिश्ता १० तोला, नारियल का गोला २० तोला, चिरोंजी १० तोला और तला हुआ बबूल का गोन्द १० तोला इन सब चीजों को उस खोवे में मिलाकर ५ सेर शक्कर की चाशनी में उस औषधि मिश्रित खोवे को और १ तोला घुटी हुई केशर को मिलाकर छटाँक छटाँक भर के लड्डू बना लेना चाहिए।

प्रतिवर्ष जाड़े के दिनों में चालीस दिनों तक एक लड्डू सबेरे और एक लड्डू शाम को खाकर ऊपर

से मिश्री मिला दूध पी लेना चाहिए। इस पाक के सेवन से मनुष्य की कामशक्ति, मेधाशक्ति, जीवनीशक्ति तथा रोग निवारकशक्ति ( Immunity Power ) एक वर्ष तक सुरक्षित रहती है। स्त्रियों के साथ रमण करने से, दिमागी मेहनत करने से तथा दूसरे परिश्रम से मनुष्य की जो शक्तियाँ खर्च होती हैं वे इसके सेवन से कई अशों में पुनः प्राप्त हो जाती है। इसके सेवन से मनुष्य के रक्त में रोगों से मुकाबिला करनेवाले तत्व बढ़ जाते हैं, जिससे किसी भी रोग का हमला उस पर कठिनाई से होता है। बहुत उत्तम योग है।

---

## सालम लाहौरी

*नामः—*

संस्कृत—सुधामूली, अमृता, अमृतोद्भव, जीवा, जीवनी, प्राणदा, वीरकन्दा। हिन्दी—सालिब मिश्री लाहौरी। पजाब—सालिब मिश्री। बङ्गाल—सालिब मिश्री, सग मिश्री। गुजराती—सालम। मराठी—सालम मिश्री। फारसी—सगमिश्री। नैपाल—हत्तिपेला। सथाल—मोंगाटेनी। उर्दू—सालिब मिश्री। लेटिन—Eulophia Campestris ( इलोफिया कम्पेस्ट्रस )।

वर्णन—यह सालममिश्री की एक देशी जाति होती है जो नैपाल, सिकिम, चटगाव, बगाल और रुहेलखण्ड में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से इसकी गठान भूख बढ़ानेवाली, अग्निवर्द्धक, मीठी, कसैली, उष्णवीर्य, भारी, रसायन, कामोद्दीपक, धातु परिवर्द्धक, रक्तशोधक और हृदय रोगों में लाभ पहुँचानेवाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कन्द कामोद्दीपक, सकोचक, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और पक्षाघात में लाभ पहुँचानेवाला होता है।

सालममिश्री शरीर को सुखानेवाले क्षयरोग तथा दूसरे रोगों में बहुत लाभदायक होती है। इसके प्रयोग से शर्कराश्मरी मिटती है। मिश्री के साथ इसके चूर्ण की फक्की देने से वीर्य्य की कमजोरी दूर होती है। इसको पीसकर दूध में औटाकर पिलाने से आमातिसार मिटता है। स्नायु जाल की कमजोरी को मिटाने के लिए सूखी सालम मिश्री का चूर्ण दूसरी उपयुक्त औषधियों के साथ देना चाहिए। पक्षाघात रोग में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

---

## सालपन

*नामः—*

हिन्दी—बड़ा सालपन। बङ्गला—साल्पन। देहरादून—छन्चरा। अवध—कसरौट। लेटिन—Flemingia Chappar ( फ्लेमिंगिया चापार )।

वर्णन--यह एक झाडीनुमा वनस्पति होती है, इसकी ऊँचाई '६ से १'२ मीटर तक होती है। इसके पत्ते छोटे और कुछ पीले रग के होते हैं। यह वनस्पति बगाल, बिहार, दक्षिणी भारत और बरमा में पैदा होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को मृगीरोग के अन्दर देते हैं। नींद लाने के लिए भी इस औषधि का प्रयोग किया जाता है।

---

## सालपन बड़ा

*नामः—*

हिन्दी–बडा सालपन। बङ्गला–बडा सालपन। लेटिन–Flemingia Nana (फ्लेमेंगिया नाना)

वर्णन--यह छोटी जाति की बनस्पति ६ से लेकर ८ इञ्च तक ऊँची होती है। यह गगा के उत्तरीय मैदानों में तथा बिहार और छोटा नागपूर में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी जड़ घाव और सूजन पर लेप करने के काम में ली जाती है।

---

## सावनी

*नामः—*

हिन्दी–सावनी, तेलिंगाचिना, फुरुश। बंगाल–फुरुश, तेलिंगाचिना। बम्बई–धायटी। तामील–सिनाप्पु। तेलगू–चिनागोरेंटा। इंग्लिश–Indian Lilac (इण्डियन लिलाक)। लेटिन–Lagerstroemia Indica (लेजेरस्ट्रोमिया इण्डिका)

वर्णन--यह एक बडी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते २ से लेकर ३ इच तक लम्बे होते हैं। इसके फूल मध्यम कद के सफेद और लाल रग के होते हैं। इसके बीज भूरे रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति आसाम, चटगाँव, लोअर वर्मा और पश्चिमीघाट में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी छाल उत्तेजक और ज्वरनाशक होती है। इसकी छाल, पत्ते और फूल विरेचक, जलनिस्सारक और तेज दस्तावर होते हैं।

---

# सामाघास

*नाम—*

संस्कृत—श्यामक, श्यामा, सुखमारा, अविप्रिया, राजधान्य, त्रिबीज, तृण बीजोत्तम। हिन्दी—सामाघास, समा, समाक, साँवा। बंगाल—श्यामा, शामुला, श्यामधान। बिहार—सावा। गुजराती—सामोवास। मराठी—जंगली सामा। पंजाब—चन्द्रा, सामा, सोक। बम्बई—सावटो। फारसी—बानरी। लेटिन—Panicum Frumentaceum (पेनिकम फ्रुमेण्टासियम) Echinochloa colona (एचिनोक्लोआ कोलोना)।

वर्णन—यह एक जाति का घास होता है जो बरसात के दिनों में जल के किनारे बहुत पैदा होता है। इसके बीजों को गरीब लोग खाते हैं। सामाघास की कुल ५५ जातियाँ होती हैं। इस घास को ढोर बड़े शौक से खाते हैं। इस घास से कागज भी बनाए जाते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सामाघास मधुर स्निग्ध, कसैला, हल्का, शीतल, वातकारक, कफ पित्तनाशक, मलरोधक और विष के दोषों को दूर करनेवाला होता है।

सामाघास की एक दूसरी जाति (Echinochloa crus-galli) रक्तस्रावरोधक और तिल्ली के विकारों को दूर करनेवाली होती है।

---

# सिंगरफ़

*नाम—*

संस्कृत—हिंगुल, रक्तपारद, रसगर्भ इत्यादि। हिन्दी—सिंगरफ़, हिंगलू, ईंगुर। मराठी—हिंगूल। बंगाल—हिंगुल। गुजराती—हिंगलो। फारसी—सिंगरफ़। अरबी—जंजफर। इंग्लिश—Sulphate of Mercury (सल्फेट ऑफ़ मरक्यूरी) लेटिन-Salphuatum Hydrargyrium (सल्फ्यूएटम हायड्रार्जीरम) Litoca polyantha (लिटोका पोलीएन्था)।

वर्णन—सिंगरफ़ एक खनिज द्रव्य है यह पारा और गन्धक का मिश्रण होता है। यह तीन प्रकार का होता है चर्मार, शुकतुण्डक और हंसपाद। इनमें चर्मार हिंगुल सफेद रंग का, शुकतुण्डक पीले रंग का और हंसपाद जपा के फूल के समान लाल रंग का और अति उत्तम होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सिंगरफ़ कड़वा, कसैला, चरपरा तथा नेत्र रोग, कफ, पित्त, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और विष को दूर करने वाला होता है।

सिंगरफ, कड़वा, गरम, तथा वात, कफ, त्रिदोष, द्वन्दज रोग और ज्वर को नष्ट करता है।

हिंगुल सर्वदोष नाशक, दीपन, अतिरसायन, सर्वरोग नाशक, वीर्यवर्द्धक, जारण और लोहे को मारने में उत्तम होता है।

*सिगरफ को शुद्ध करने की विधि*—सिंगरफ को नीम्बू के रस, भेड़ के दूध तथा नीम के पत्तों के रस में एक-एक बार खरल करके सुखा लेने से वँह शुद्ध हो जाता है। अगर विशेष शुद्ध करना हो तो उपरोक्त तीनों चीजों में सात सात बार खरल करके सुखाना चाहिए।

*सिगरफ को भस्म करने की विधि*—उपरोक्त विधि से शुद्ध किये हुए सिंगरफ को सफेद कनेर की जड़ की छाल के रस में एक दिन तक खरल करके उसकी टिकडिया बना लेना चाहिये। इन टिकडियों को सुखाकर, सफेद कनेर के २०० फूलों को पीस कर उनकी लुगदी बनाकर उस लुगदी में उन टिकडियों को रखकर सराव सम्पुट में बन्द करके कपड मिट्टी कर गजपुट की आँच में फूँक देना चाहिए। इससे सफेद रग की निर्धूम भस्म तैयार होगी, इस भस्म को कोयले के अङ्गारे पर थोडी सी डाल कर जॉच लेना चाहिए, अगर धुँवा बिलकुल न उठे तो समझना चाहिए कि उत्तम भस्म तैयार हो गई है, अगर धुँवा थोड़ा उठता दिखलाई दे तो एक बार फिर उपरोक्त विधि से कनेर के फूलों की लुगदी में रखकर उसे फूक लेना चाहिए।

जाडे के दिनों में इस भस्म को एक चावल के बराबर मात्रा में मक्खन के साथ खाकर ऊपर से मिश्री मिला गरम दूध पीना चाहिए तथा तैल, गुड, खटाई, मिरची, अचार, स्त्री प्रसग इत्यादि चीजों से परहेज करना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक इस भस्म का सेवन करने से नपुन्सकता, खाँसी, दमा, उपदश, वातरक्त, कुष्ठ इत्यादि रोगों में काफी लाभ होता है।

हिंगलू से पारद निकालने की विधि पारद के प्रकरण में दे दी गई है।

*हिंगलू और वाजीकरण*—एक सेर उडद की दाल को पानी में गला कर उस दाल में डेढ माशा शुद्ध हिंगलू मिला देना चाहिए और एक स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट बकरी को यह दाल खिला देना चाहिए। उसके पश्चात् बकरी को जगल में चरने को छोड देना चाहिए। इस प्रकार यह योग उसे प्रति दिन खिलाना चाहिए। जब बकरी को यह योग खाते आठ दिन हो जाँय तब उसका दूध निकाल कर पीना चाहिए। इस प्रकार तीस दिन तक यह योग बकरी को खिलाना चाहिए तथा खिलाना शुरु करने के आठ दिन पश्चात् से लेकर खिलाना बन्द करने के आठ दिन बाद तक मनुष्य को उसका दूध सेवन करना चाहिए।

यह एक अतिउत्तम योग है। तीस दिन तक इस दूध का लगातर सेवन करने से जन्म के नपुसक को छोडकर किसी भी प्रकार की कष्ट साध्य स्थिति में पहुँचे हुए नपुसक की नपुसकता दूर हो जाती है। उसकी काम शक्ति बेहद बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त उसकी जीवन शक्ति, उसकी रोग निवारक शक्ति, उसकी काति, ओज इत्यादि सभी प्रकार की शक्तिया बढ जाती हैं। शुद्ध पारद को खाने से जो जो क्रियाएँ मनुष्य शरीर में होती हैं वे सब इस योग से भी होती हैं। लाभ इतना ही है कि प्रत्यक्ष पारद को

खाने से, उसकी प्रतिक्रियाओं का जो भय रहता है वह इस योग में नहीं रहता। कई लोगों की यह मान्यता है कि बकरी के पेट में पारद की जैसी शुद्धि होती है वैसी किसी भी दूसरी क्रिया से नहीं होती। इसमें पारद के सब गुण मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं मगर उसके दोषों से वह बिलकुल बचा रहता है।

---

# सिंघाड़ा

*नाम:*

संस्कृत—शृंगाटक, जलफल, त्रिकोण फल, जल कण्टक इत्यादि। हिन्दी—सिंघाडा। बंगला—पानी फल। मराठी—शिंगाडा। गुजराती—शिंगोडा। काश्मीर—गौरी। पंजाब—गौरी, सिंघाडा। तामील—सिंघाडा। उर्दू—सिंघाडा। अंग्रेजी—Singhara nut (सिंघाडा नट) लेटिन—Trapa Bispinosa (ट्रेपा बिस पिनोसा)।

वर्णन—सिंघाडे की बेलें तलावों में जल के अन्दर पैदा होती हैं। इन बेलों के ऊपर तीन धार वाले फल लगते हैं जो कच्ची हालत में हरे और पकने पर काले हो जाते हैं। इन फलों के दोनो किनारे तेज कांटे-दार रहते हैं। इस फल के भीतर सिंघाडा रहता है यह कच्ची हालत में दूधिया रसदार और सूखने पर सख्त हो जाता है। औषधि प्रयोग में इसका फल ही काम में आता है।

गुण दोष और *प्रभाव*—

आयुर्वेदिक मत से सिंघाडे शीतल स्वादिष्ठ, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैले, मलरोधक, वातकारक, कफ-नाशक तथा रक्त पित्त और दाह को दूर करनेवाले होते हैं।

राजनिघण्टु के मत से सिंघाडे रक्त पित्तनाशक, हलके, कामोद्दीपक, त्रिदोषनाशक, ताप निवारक, श्रम-हारक, रुचिकारक और लिंग को दृढ करनेवाले होते हैं।

निघण्टुरत्नाकर के मत से सिंघाडे अत्यन्त कामोद्दीपक, हलके, मलरोधक, रुचिकारक, वीर्य्यवर्द्धक, वात और कफ को पैदा करने वाले, लिंग को दृढ करने वाले, कसैले, मधुर, शीतल, तृप्तिकारक, स्वादिष्ट, पित्तनाशक तथा दाह, त्रिदोष, प्रमेह, रुधिर विकार, भ्रम, सूजन और सन्ताप को हरनेवाले होते हैं।

सिंघाडे की पेज बनाकर, अतिसार, आँव और प्रदर रोग में देते हैं। इसके सेवन से कफ पडना और रक्त बहना कम हो जाता है और रोगी का रंग फीका नहीं होता, गर्भवती स्त्रियों को भी यह बेखटके दी जा सकती है। पित्त प्रकृति के मनुष्यों के लिए यह पेज बहुत गुणकारी होती है।

सिंघाडे का फल एक खाद्य पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। हिन्दू लोग एकादशी के व्रत में इसको फलाहार के रूप में लेते हैं। यह मीठा और शीतल होता है। पित्त विकार और अतिसार में इसका उपयोग किया जाता है। पुल्टिस के रूप में इसका वाह्य उपयोग भी होता है।

कम्बोडिया के लोग इसके फल को पौष्टिक और ज्वर नाशक समझते हैं वे इसका निर्यास मलेरिया और दूसरे ज्वरों की कमजोरी को दूर करने के लिए देते हैं।

भावप्रकाश के मतानुसार इसका फल दूसरी औषधियों के साथ सर्प विष को दूर करने के लिए दिया जाता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है।

*उपयोगः--*

*अतिसार*-सिंघाडे का सेवन करने से अतिसार मिटता है।

*दाह*-सिंघाड़े की बेल को पीसकर लेप करने से दाह मिटती है।

*रक्त प्रदर*-सिंघाडे के आटे की रोटी बनाकर खाने से रक्त प्रदर मिटता है।

*वीर्य्यवर्द्धन*-सिंघाड़े के आटे की दूध के साथ फक्की लेने से अथवा उसका हलवा बनाकर खाने से वीर्य्य बढ़ता है।

---

# सिपाम

*नामः*—

मलयालम-सिपाम। लेटिन-Gymnopetalum Cochinchinense (जिम्नोपेटेल्म कोचीनचिनेन्स)।

वर्णन-यह वनस्पति मलाया पेनिनशुला और चीन में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

छोटा नागपुर की मुण्डा जाति के लोग इसकी जड की गठान को कुचल कर उसे गर्म पानी में मिला कर किसी भी दर्द के स्थान पर दर्द को दूर करने के लिए मालिश करते हैं। शरीर के अवयवों की क्षीणता को दूर करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

---

# सिमेना विरुंजी

*नामः*—

तामील-सिमेना विरुजी। लेटिन-Stachytarpheta Indica (स्टेचिटारफेटा इण्डिका)।

वर्णन-यह एक छोटी जाति की वर्षजीवी वनस्पति होती है जो भारतवर्ष अमेरिका और अफ्रिका में पैदा होती है। कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

ब्राझील में यह वनस्पति बहनेवाले व्रणों के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है तथा ज्वर और सधि वात में इसको खिलाई जाती है। गायना में अतिसार के अन्दर इसको देते हैं। लारियूनियन में इसके पत्ते फोड़ों को पकाने के लिए बाँधे जाते हैं। गोल्ड कास्ट में इसके पत्तों का रस नेत्र रोगों को दूर करने के लिए आँखों में टपकाया जाता है। हृदय रोगों में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

---

# सिरस काला

*नाम:—*

सस्कृत—शिरीष, भण्डीर, शुकपुष्प, विषनाशन, स्वर्ण पुष्पक इत्यादि। हिन्दी—सिरस, काला सिरस। बङ्गला—सिरिस। गुजराती—सरसडो, कालियो सरस। मराठी—शिरस। कोकण—गारसो। फारसी—दरख्ते जकरिया। अरबी—सुल्तानुल असजार। उर्दू—दराश। तामील—सोनागम। तैलगू—सिरशामु। अंग्रेजी—Siris Tree (सिरिस ट्री) लेटिन—Albizza Lebbek. (एलबिझालेबेक)।

वर्णन—सिरस के वृक्ष बहुत ऊचे ऊचे होते हैं। इसके पत्ते एक से लेकर डेढ इच तक लम्बे, इमली के पत्तों के आकार के मगर उनसे बड़े होते हैं। इसके फूल अत्यन्त कोमल छोटे और सुगन्धित होते हैं। इनका रग कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। इसकी फलिया चरपरी, भूरे रगकी और छः से बारह इच तक लम्बी होती हैं। हर एक फलीमें दस बारह बीज रहते हैं जो बहुत सख्त होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सिरस कड़ुवा, शीतल तथा विष, खुजली, रुधिर विकार, कुष्ठ, कण्डू और त्वचा के दोषों को दूर करनेवाला होता है।

सिरस बवासीर, विष, पसीना, चर्म रोग, सूजन और विसर्प को दूर करता है।

भाव प्रकाश के मत से सिरस मधुर, अनुष्ण, कड़वा, कसैला, हलका तथा सूजन, विसर्प, खाँसी, व्रण और विष को हरनेवाला होता है।

इसकी जड सूर्यावर्त या आधा शीशी रोग में लाभ पहुचाती है, इसकी छाल कड़वी, शीतल, विष नाशक, कृमि नाशक, तथा वात, रक्तरोग, बवासीर, सूजन, विसर्प, खाँसी और चूहे के विष को दूर करती है। इसके पत्ते आख के दुखने को अच्छा करते हैं। इसके फूल दमा और सर्प विष में उपयोगी होते हैं और इस वनस्पति के सभी अङ्ग सर्प विष में लाभ पहुचाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड सकोचक और नेत्राभिष्यन्द रोग में लाभ पहुँचाती है। इसकी छाल कृमिनाशक, दतशूल को दूर करनेवाली, मसूड़ों को बल देनेवाली तथा कुष्ठ, बहरापन,

विस्फोटक, खुजली, उपदंश, पक्षाघात और कमजोरी में लाभ पहुँचाती है। इसके पत्ते रतौंधी को दूर करते हैं। इसके फूल कामोद्दीपक, स्निग्ध और फोड़े को पकानेवाले होते हैं, इनको सूंघने से आधाशीशी मिटती है। इसके बीज कामोद्दीपक, मस्तिष्क को शक्ति देनेवाले तथा सुजाक और कण्ठमाला में लाभदायक होते हैं। इनका तेल श्वेतकुष्ठ पर लगाने के काम में आता है।

इसके बीज संकोचक और धातु पौष्टिक होते हैं और ये अतिसार तथा धातु की कमजोरी में उपयोग में लिये जाते हैं। इसके पत्तों का पुलटिस बनाकर त्वचा के रोग, फोड़े, फुन्सी और सूजन के ऊपर बाधा जाता है। इसकी छाल का चूर्ण अञ्जन की बतौर आँख के रोगों को दूर करने के लिए आँखों में आंजा जाता है। इसकी छाल का काढा मुँह के छालों और मसूढ़ों की सूजन में कुल्ले करने के उपयोग में लिया जाता है। इस काढ़े को पेट में पीने से यह रक्तशोधक और कामोद्दीपक प्रभाव बतलाता है।

इसके पत्तों का रस रतौंधी को दूर करने के लिए आँखों में आंजा जाता है और इस प्रयोग के साथ ही भीतरी उपचार की तरह इसका काढा पिलाया जाता है। इसकी छाल का काढा दाँत के मसूढ़ों को मजबूत करने के लिए कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसकी छाल का आठ से दस रत्ती तक चूर्ण, तीन चार तोले घी के साथ मिलाकर प्रतिदिन खाने से उत्तम शक्तिवर्द्धक और रक्तशोधक वस्तु का काम करता है। इसके बीज वीर्य्य स्तम्भक और कामोद्दीपक होते हैं। इसके बीजों का दो माशा चूर्ण चार माशा शक्कर के साथ प्रतिदिन गरम दूध के साथ लेने से वीर्य को बहुत गाढा करता है। इसके बीजों को पानी के साथ पीसकर उनका लेप गले की गठानो पर करने से वे गठानें बैठ जाती हैं।

*सिरस और नेत्ररोग—*

यूनानी हकीमों का कथन है कि नेत्रों के हर प्रकार के रोगों में यह वनस्पति बहुत चमत्कारिक लाभ पहुँचाती है। करावादीन जुकाई नामक पुस्तक में लिखा है कि मेरठ के शाहजादे की दोनों आँखों में फूले पड़ गये। अनेक हकीमों ने अनेक प्रकार की औषधियाँ इनको दूर करने के लिये उपयोग में लीं, मगर किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ, तब हादीहुसैन नामक हकीम ने सिरस के योग से नीचे लिखे प्रयोग को बना कर शाहजादे की आँखों में आँजा, जिससे वे फूले कट गये। वह प्रयोग इस प्रकार है—

काच की हरी चूड़ियाँ १ तोला, मुरगे के हगार की सफ़ेदी ८ माशा, मुरगी के अण्डे के छिलके ४॥ माशे, अनबिन्ध मोती ४॥ माशे, ममीरा ४॥ माशे, ( अगर ममीरा न मिले तो सफेद पुनर्नवा की जड ले सकते हैं। और हल्दी २ माशे। सबसे पहले काच की चूड़ी को पानी के साथ तीन दिन तक खूब खरल करना चाहिए। उसके पश्चात् उसमें शेष सब औषधियों को मिला कर अच्छी तरह खरल करके दिन में दो बार आँखों में आँजना चाहिए और ऊपर से सिरस के पत्तों को बाफ कर आँखों पर बाँधना चाहिए इस प्रयोग से आँख का फूला थोड़े ही दिनों में कट जाता है।

खिरनी के बीजों को पीस कर उनको चार पाँच दिन तक सिरस के पत्तों के रस में खरल करके फिर पाँच छः दिन बड़ के दूध में खरल करना चाहिए, इस योग को भी आँख में आँजने से आँख की फूली कट जाती है।

*मूत्रकृच्छ्र*—सिरस के बीजों के तेल को दूध की लस्सी में डाल कर पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है। इसके पत्तों की लुग्दी को पानी में छानकर मिश्री मिलाकर पीने से भी मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

*जलोदर*—सिरस की छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से जलोदर की सूजन उतरती है।

*आधाशीशी*—सिरस के बीजों को पानी के साथ पीस कर साफ कपड़े की पोटली में बाँध कर जिस बाजू में पीडा हो उसी बाजू के नाक को छिद्र में इसकी दो तीन बूँदें टपकाने से आधा शीशी मिट जाती है।

*श्वेतकुष्ठ*—सिरस के बीजों के तेल की मालिश करने से श्वेतकुष्ठ में लाभ होता है।

*कुष्ठ*—सिरस के डेढ़ तोले पत्तों को २ माशे काली मिरच के साथ पीसकर ४० दिन तक पीने से कुष्ठ में बहुत लाभ होता है।

*विषविकार*—पुराने सिरस की अन्तर्छाल और जड़ की छाल तथा बीज और फूलों को गौमूत्र के साथ दिन में तीन बार पिलाने से सब प्रकार के विष विकार में लाभ होता है।

मिथुन की सक्रान्ति में इसकी सात माशे छाल को पीसकर चावलों की धोवन के पानी के साथ तीन दिन तक पी लेने से सर्पादिक जहरीले जानवरों का विष नहीं चढता है।

*सन्निपातज मूर्च्छा*—सिरस के बीज और काली मिरच समान भाग लेकर बकरी के मूत्र के साथ पीसकर आँख में आजने से सन्निपातज मूर्च्छा मिटती है।

*विसर्प*—सिरस की छाल के चूर्ण का सौ बार धोये घी में मिलाकर लेप करने से विसर्प रोग मिटता है।

*सूर्य्यावर्त आधा शीशी*—सिरस के बीजों के चूर्ण को सुघाने से सूर्योदय के साथ बढ़नेवाली आधा-शीशी मिटती है।

*उन्माद और अपस्मार*—सिरस के बीज और करज के बीजों को पीस कर अजन करने से उन्माद, अपस्मार और नेत्र रोग मिटते हैं।

*सर्पविष*—इसके पत्ते या फूलों के रस की सफेद मिरचों को सातभावना देकर उन मिरचों को साँप के काटे हुए आदमी को खिलाने से और उन मिरचों का चूर्ण करके आँख में आंजने से साँप का विष उतर जाता है।

*मेंढक का विष*—इसके बीजों को थूहर के दूध में पीसकर लेप करने से मेंढक का विष उतरता है।

*कर्णपीड़ा*—सिरस के पत्ते और आम के पत्तों के रस को कुनकुना करके कान में टपकाने से कर्ण-पीड़ा मिटती है।

*अण्डकोषों की सूजन*—इसकी छाल को पीसकर लेप करने से अण्डकोषों की सूजन मिटती है।

*बन्द जुकाम*—सिरस के बीजों को महीन पीसकर सुंघाने से बन्द जुकाम मिटता है।

*नेत्रपीडा*—इसके पत्तों के रस का अञ्जन करने से नेत्रपीडा मिटती है।

*बवासीर*—सिरस के बीजों के तेल का लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

*पित्तशोथ*—गर्मी के फोडे, फुन्सी और पित्तशोथ पर इसके फूलों का लेप करने से लाभ होता है।

डाक्टर देसाई के मत से सिरस में पौष्टिक, वाजिकरण, ग्राही और विषनाशक धर्म रहते हैं।

इसके फूल वीर्य को गाढा करने और वीर्य को स्तम्भन करने के लिए दिये जाते हैं। इसकी छाल का चूर्ण घी के साथ देने से धातुपौष्टिक और कामोद्दीपन का उत्तम कार्य करता है। इसकी छाल के काढे से कुल्ले करने से दाँत मजबूत होते हैं। इसके बीजों का लेप करने से और उनका चूर्ण पेट में खिलाने से गण्डमाला के रोग में बहुत लाभ होता है और वैद्य को यश मिलता है। रतौंधी के अन्दर इसके पत्तों का काढा पिलाने से और इसके पत्तों के स्वरस को आजने से बहुत लाभ होता है।

मात्रा—सिरस की छाल की साधारण मात्रा १ माशा और इसके बीजों की मात्रा चार माशे तक होती है।

---

# सिरस पीला

*नाम —*

संस्कृत—पीत शिरीष। हिन्दी—सिरस पीला। लेटिन—Albizza Odoratissima (एलबिझा ओडोरेटिस्मा।)

वर्णन—यह सिरस की एक सफेद जाति होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी छाल को पीसकर लेप करने से कुष्ठ और हठीले व्रण में लाभ होता है। इसके पत्तों को घी में भूनकर देने से खाँसी मिटती है।

*उपयोग—*

कुष्ठ—इसकी छाल का लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

फोडे—पुराने और कठोर फोडों पर इसका लेप किया जाता है।

घाव—सफेद सिरस की छाल का चूर्ण घाव पर भुरभुराने से घाव भर जाता है।

*वातपीड़ा*–सिरस के पत्ते, निर्गुण्डी के पत्ते और सहजने के पत्ते इन सबको पानी में औटाकर उनका बफारा देने से और उनको बाँधने से सधियों की वातपीड़ा मिटती है।

*दंतपीड़ा*—सिरस के बीजों की माला बनाकर पहिनाने से बच्चों को दाँत निकलने के समय कष्ट नहीं होता है।

---

# सिरस सफेद (गुराड़)

*नामः—*

हिन्दी–सफेद सिरस, बाढो, गारसो, गुराड इत्यादि। बङ्गला–कोराई। बम्बई–गुराई, तिहिरी, कराल। दक्षिण–कनाल। मराठी–किनहाई।, इंग्लिश–White Siris लेटिन–Albizza Procera (अलबिझा प्रोसीरा)।

वर्णन–यह भी सिरस की एक जाति होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसके पत्ते कृमिनाशक होते हैं इनका पुलटिस बनाकर व्रणों पर बाँधा जाता है।

---

# सिरन

*नामः—*

हिन्दी–सिरन, श्यामसुन्दर, पट्टिया। बङ्गाल–अमलुकी, चकुवा। बम्बई–उदाला। कोकण–फलारी। पंजाब–सिरस, ओई, कसीर। तामील–सिलाई वागी। तेलगू–चिण्डागा। लेटिन–Albizza Stipulata (अलबिझा स्टिप्यूलेटा)।

वर्णन—यह भी एक सिरिस के वर्ग का हमेशा हरा रहनेवाला ऊँचा वृक्ष होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी छाल का शीत निर्यास लोशन की तरह घाव, खुजली और दूसरे चर्मरोगों पर उपयोग में लिया जाता है।

---

# सिन्दूर

*नामः—*

संस्कृत–सिन्दूर, नागज, शृङ्गारभूषण, नागरक्त, शृङ्गारक। हिन्दी–सिन्दूर। बङ्गला–सिन्दूर।

शेन्दुर। गुजराती-सिन्दूर। अंग्रेजी-Red Lead (रेडलेड)। लेटिन-Plumbi Oxidum Rubram (प्लुम्बी ऑक्सिडम रुब्रम)।

वर्णन—सिन्दूर लाल रङ्ग का पदार्थ होता है जो सारे भारत में देवी देवता के पूजन में तथा स्त्रियों के श्रृङ्गार में काम में लिया जाता है यह नाग अथवा सीसे से बनाया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सिन्दूर गरम, विसर्पनाशक, कुष्ठविनाशक, कण्डूनिवारक, विषहारक, भग्नसंधानकारक, व्रण को शोधने वाला तथा भरने वाला होता है। इसके और गुण सीसे के समान होते हैं।

सिन्दूर का शोधन—कांजी, नीबू का रस और गाय के दूध में तीन तीन बार भावना देने से सिन्दूर शुद्ध हो जाता है।

---

# सावादुबु

नामः—

सीलोन—सावादुबु, लेटिन—Ipomoea Disseeta (इपोमीया डिस्सेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी और दक्षिणी भारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के पत्ते बच्चों को होने वाली छाती की शिकायतों में उपयोगी होते हैं।

---

# सिराल

नाम —

बम्बई—सिराल, अनसेल। बङ्गला—असार। तामील—विसालम, कदाम्बु। लेटिन—Grewia Microcos (ग्रेविया मायक्रो कास)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा वनस्पति पूर्वी बंगाल, आसाम, पश्चिमी प्रायद्वीप और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति ददहजमी, एक्झीमा, खुजली, चेचक, टाइफाइड ज्वर, अतिसार, उपदंशजनित मुँह के व्रण इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों में लाभ पहुँचाती है।

---

# सीताफल

*नामः—*

संस्कृत—सीताफल, गड्गात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णबीज। हिन्दी—सीताफल। बंगला—आता, लूना, मेहा। मराठी-सीताफल। गुजराती-सीताफल, अनान। फारसी—शरीफा, काज। इंग्लिश-Sugar Apple (सुगर अपील) लेटिन—Annona Squamosa (अनोना स्क्वेमोसा)।

वर्णन—सीताफल सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, यहाँ के जनसमाज में यह बडे चाव से खाया जाता है, अतः इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सीताफल तृप्तिजनक, रक्तवर्द्धक, स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकारी, बलवर्द्धक, मांसवर्द्धक तथा दाह, रक्तपित्त और वात को नष्ट करनेवाला होता है।

निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार सीताफल मधुर, शीतल, हृदय को हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, कफकारक, स्वादिष्ट, पौष्टिक और पित्तनाशक होता है।

इसका फल स्वादिष्ट, पौष्टिक, रक्त को बढानेवाला, मांस पेशियों को दृढ करनेवाला, शीतल, दाह को दूर करनेवाला, हृदय के लिए उपशामक, पित्त को नष्ट करनेवाला और वमन को शान्त करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड विरेचक होती है। इसका फल मीठा, रक्त को बढाने वाला उत्तेजक, कफनिस्सारक और स्वादिष्ट होता है। इसके बीज पचने में भारी, ज्वर और विस्फोटक को पैदा करनेवाले, गर्भघातक और आँख में व्रण को पैदा करने वाले होते हैं। इनको बालों में लगाने से ये सिर की जुँओं को मार देते हैं। मगर इनका रस भूल कर भी आँखों में नहीं पहुँचने देना चाहिये।

इसके पत्तों को कुचल कर कारबङ्कल पर बाँधने से लाभ होता है और इसका फल आमातिसार में दिया जाता है।

सीताफल की जड तीव्र विरेचक होती है और तीव्र आमातिसार में दी जाती है। इसी प्रकार यह मानसिक शक्तियों की गिरावट और पीठ की रीढ सम्बन्धी बीमारियों में भी दी जाती है। इसकी छाल संकोचक होती है और यह अतिसार को रोकने के लिए दी जाती है।

इसके पत्तों का निर्यास बच्चों की बढी हुई एनी (Ani) में लाभदायक समझा जाता है। इसके पत्तों को कुचल कर उनमें नमक मिला कर उनका पुल्टिस बना कर फोडों को पकाने के लिए उन पर बाँधा जाता है। इसका पका हुआ फल भी फोडे को पकाने वाला माना जाता है और इसको कुचल कर इसमें नमक मिला कर साघातिक गठानों को जल्दी पकाने के लिए उन पर बाँधते हैं। इसके बीजों में कसैला तत्व रहता है जो कृमियों को मार देता है। इसके कच्चे फलों का चूर्ण चने के आटे में मिला कर कीडों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीजों का चूर्ण आँखों के लिए एक अत्यन्त घातक वस्तु है। इसके आख में पड़ जाने से आँखें फूट जाती हैं, इसलिए इससे आखों को बहुत बचाना चाहिए।

भैंस के बच्चों के पेट में जो लम्बे २ केंचुएँ पड जाते हैं वे सीताफल के पत्तों को पिलाने से मरकर निकल जाते हैं।

उपयोग —

*गठान*—पके हुए सीताफल को कूटकर उसमें नमक मिलाकर बाधने से हुए वायु, जल और पृथ्वी से पैदा हुई साघातिक गठानें जल्दी पककर फूट जाती हैं।

*कृमि*—इसके बीजों का लेप करने से घाव वगैरह के कृमि मर जाते हैं। इसके कच्चे फल को सुखाकर, पीसकर चने के आटे में मिलाकर खिलाने और लेप करने से कीड़े मर जाते हैं।

*काँच निकलना*—इसके पत्तों की हिम या फाट से गुदा धोने से बच्चों को कांच निकलना बन्द हो जाती है।

*प्रसूति कष्ट*—इसके बीजों को पीसकर गर्भाशय के मुँह पर लगाने से बालक सुख से पैदा हो जाता है।

*नारू*-सीताफल के पत्तों को पीसकर उनकी टिकिया बनाकर बाधने से नारू बाहर निकल आता है।

फोडे-इसके गीले पत्तों की टिकडी बनाकर बिगड़े हुए फोड़ों पर बाँधने से वे अच्छे हो जाते हैं। सीताफल के पत्ते, तमाखू और बिना बुझे हुए चूने को पीसकर जिन घावों में कीड़े पड जाते हैं उन पर लेप करते हैं।

ज्वर-सीताफल की छाल का क्वाथ पीने से ज्वर छूटता है।

*मिरगी*—इसके बीजों की मगज को पीसकर कपड़े की बत्ती में रखकर उस बत्ती को जलाकर उसका धुँआ नाक में पहुँचाने से मिरगी के समय लाभ होता है।

---

# सीसा

नाम.—

संस्कृत-नाग, सीस, सुवर्णक, महाबल, चीन, पिष्ट इत्यादि। हिन्दी-सीसा, नाग। बङ्गला-सीसा। मराठी-शिसें। गुजराती-सीसु। तेलगू-सीस। फारसी-सुब। अरबी-रसासुल। अंग्रेजी-Lead (लेड)। लेटिन-Plumbum (प्लम्बम)।

वर्णन—सीसा एक खनिजद्रव्य होता है, यह वङ्ग या रांगे के समान मगर रङ्ग में उससे कुछ काला होता है। इसकी उत्पत्ति का वर्णन करते हुए प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि "भोगी सर्प की महारूपवती

और युवती कन्या को देखकर वासुकि सर्प कामोन्मत्त हो गया। उस सर्प से जो वीर्य्यपात हुआ उसीसे मनुष्य के सब रोगों को दूर करनेवाले सीसे की उत्पत्ति हुई।

सीसा दो प्रकार का होता है, कुमार और समल। इनमें कुमार जाति का सीसा औषधि कार्य में उत्तम होता है। जो सीसा आग पर रखने से शीघ्र गल जाय, तौल में भारी हो, तोडने में काला और भीतर उज्ज्वल हो, जिसमें दुर्गन्ध हो और जो बाहर से काला हो वह उत्तम होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सीसा क्षय रोग, वातविकार, गुल्म, पाण्डुरोग, भ्रम, कृमि, कफ, शूल, प्रमेह, खाँसी, सग्रहणी और गुदा के रोगों में लाभदायक होता है।

शीशे के गुण प्रायः बङ्ग या रांगे के तुल्य होते हैं। यह प्रमेह को दूर करनेवाला, व्याधि विनाशक, जीवनशक्ति वर्द्धक, जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, कामोद्दीपक, बलवर्द्धक और सौ हाथियों के समान बल देनेवाला होता है।

अशुद्ध या कच्चा नाग खाने से कुष्ठ, गुल्म, कण्डू, प्रमेह, मदाग्नि, सूजन, भगन्दर इत्यादि उपद्रव पैदा होते हैं।

*सीसे को शुद्ध करने की विधियाँ*—सीसे की शुद्धि बिलकुल बङ्ग की शुद्धि की तरह होती है। बङ्ग के प्रकरण में लिखी बग शुद्धि के अनुसार ही तेल, मट्ठा, गौमूत्र, काजी और कुल्थी का काढा इन पाँच चीजों में सीसे को गला २ कर सात २ बार बुझाना चाहिए। बग की तरह सीसा भी जलीय वस्तुओं में बहुत उछलता है इसलिए बग ही की तरह इसका शोधन पिठर यन्त्र में करना चाहिए।

*विशेष शुद्धि*—सामान्य शुद्धि के पश्चात् त्रिफला का काढा, घीगुवार का रस और हाथी के मूत्र में सात २ बार पिठर यन्त्र में बुझाने से सीसे की विशेष शुद्धि हो जाती है। यह खयाल रखना चाहिए कि सीसे को तपाने के लिए अगर खैर या नीम की लकडी ली जावेगी तो विशेष उपयोगी होगा।

*सीसे को भस्म करने की विधियाँ*—१—आध सेर शुद्ध सीसे को लोहे की कड़ाही में रखकर अग्नि के ऊपर रक्खें,जब सीसा पिघल जाय तब उसमें आधा सेर शोधन किया हुआ या हिङ्गुल से निकाला हुआ पारद डाल दें, दोनों के मिल जाने से एक प्रकार की पिट्ठी बन जावेगी, उस पिट्ठी को दो दिन तक नीम्बू के रस में घोटें और फिर पानी से धोकर खटाई को निकाल दें। इस पिट्ठी को खरल में समान भाग तीसरी गन्धक (मैनशिल) शुद्ध की हुई डालकर कजली करलें। इस कजली को किनारे पर तारों से बन्धे हुए और कपड़ मिट्टी किए हुए मिट्टी के कुण्डे में अथवा लोहे की कढाही में भर कर रोटी करने के छोटे चूल्हे पर रखकर मन्दाग्नि से पकावें और उसके ऊपर थोड़ा-थोड़ा सफेद गुञ्जा या चिरमिटी का क्वाथ भी डालते जायँ।

जब मन्दी मन्दी आँच से धीरे-धीरे नीम के डण्डे से चलाते हुए साढे पांच सेर चिरमिटी का क्वाथ कजली में सूख जाय तब साढ़े पाच सेर अडूसे के पत्तों का स्वरस या अडूसे का क्वाथ भी उस

कजली पर थोड़ा थोड़ा करके जला दें, उसके पश्चात् साढ़े पाँच सेर नीम के पत्तों का स्वरस भी उस पर जला दें। तत्पश्चात् उस कजली को खरल में डालकर घीगुवार के रस में घोटें। घोटते घोटते जब कजली बिलकुल सूख जाय तब उस कजली को नलिका डमरू यन्त्र में रख कर तीन पहर की आँच दें। उसके पश्चात् यन्त्र के स्वाँग शीतल होने पर नली के चारों तरफ लगे हुए पारद को अलग निकाल लें और नलिका डमरू यन्त्र के तल भाग में जमी हुई सीसे की भस्म को अलग निकाल लें।

इस भस्म को कपड़ मिट्टी किये हुए मिट्टी के कुण्डे में रख कर तालादि भस्म करी भट्टी * पर चढ़ा कर अग्नि दें और ऊपर सफेद गुञ्जा का चूर्ण भी थोड़ा थोड़ा भुरभुराते जावें और नीम के डण्डे से चलाते जावें। इस प्रकार आध सेर चूर्ण जल जाने पर उस भस्म को कपड़े में छान कर शीशी में भर लें। जो कुछ मोटा दरदरा अंश कपड़े के ऊपर बच जाय उसे भी कूट कर कुंडे में डाल कर भट्ठी पर रख कर तपावें और नीम के डण्डे से चलाते जावें तथा थोड़ा थोड़ा सफेद चिरमिटी का चूर्ण भी उस पर डालते जावें। इससे वह भी महीन हो जावेगा।

यह सीसे की भस्म भूरे रंग की और अत्यन्त उत्तम होती है। इसको एक रत्ती से दो रत्ती तक शहद या उचित अनुपान के साथ लेने से शरीर में बल, ओज तथा कान्ति बढ़ती है। वीर्य्य पुष्ट होता है, स्त्रियों से रमण करने की तथा उन्हें सन्तुष्ट करने की शक्ति बढ़ती है तथा खाँसी, शूल, मन्दाग्नि, कृमि, क्षय, बवासीर, कफरोग, वात रोग और शुक्र के रोग नष्ट होते हैं। (रसायनसार)

*नाग भस्म की दूसरी विधि*—बबूल के कोयलों की आग जलाकर उस पर ताम्बे का बर्त्तन रक्खे, जब वह बर्तन तपकर सुर्ख हो जाय तब उसमें शुद्ध किया हुआ सीसा डाल दें, जब सीसा गल जाय तब उस पर केवड़े और तुलसी का कूट पीसकर तैय्यार किया हुआ चूर्ण थोड़ा थोड़ा डालते जायँ और नीम के डण्डे से सीसे को घोटते जायँ, इस प्रकार कोई आधे घण्टे में हलदी के रंग की भस्म तैय्यार होगी। इस भस्म को खरल में डालकर नीम्बू के रस में खरल करना चाहिये और फिर टिकिया सी बनाकर सराव सम्पुट में रख कर दो गज पुट की आग देना चाहिए।

जब दो बार नीम्बू के रस में खरल करके दो गजपुट की आँच लग जाय, तब दो बार बन तुलसी के रस में खरल करके दो गजपुट में उसे और फूँकना चाहिए। इसी प्रकार दो गजपुट जयवन्ती के रस में, दो गज पुट भांगरे के रस में, दो गजपुट गोदन दूबी के रस में और दो गजपुट घीगुवार के रस में देने पर उत्तम सिन्दूर के रंग की भस्म तैय्यार होती है।

*सीसा भस्म की तीसरी विधि*—शोधा हुआ सीसा एक सेर एक मिट्टी के ठीकरे में रखकर आग पर रक्खो, जब सीसा गल जाय उसको केवड़े के डण्डे से चलाओ, जब तक भस्म न हो जाय उसे डण्डे से घोटना बन्द मत करो, जब भस्म हो जाय तब उस पर पिसा हुआ कलमी शोरा मुट्ठी से थोड़ा-थोड़ा डालते जाओ और लोहे की कम्छी से चलाते जाओ, जब शोरा खतम हो जाय जरा दूर हटकर घोटो क्योंकि

* इन सब भट्ठियों और यंत्रों का वर्णन रसायनसार या और किसी रस ग्रन्थ में देखना चाहिए।

अब शोरा एक दम जल उठेगा। जब शोरा जल उठे ठीकरे को उतार लो और उसमें से भस्म को चाकू से छील छीलकर एक बर्त्तन में इकट्ठी कर लो।

इसके बाद उस भस्म को खरल में डालकर ऊपर से बडकी जटा का अर्क और केवडे की जड का अर्क डाल-डालकर घोटो और फिर टिकिया बनाकर धूप में सुखा लो। फिर इसमें से पाव भर टिकिया को सराव-सम्पुट मे रखकर चार सेर कण्डों की आग में फूँक दो, अगर पीले रग की भस्म तैय्यार होजाय तब तो ठीक है अन्यथा और एक बार उसे बड की जटा में और केवडे के अर्क में घोटकर सराव सम्पुट में रखकर फूँक दो।

उपरोक्त भस्म यूनानी तरीके की है जो हकीम खूबचन्द की लिखी हुई है। हकीम खूबचन्द का कहना है कि यह बहुत उत्तम भस्म होती है, इसकी मात्रा चार चावल की होती है।

१—इसकी एक मात्रा को आधा पाव अनार के रस के साथ देने से बवासीर से गिरता हुआ खून बन्द हो जाता है।

२—इस सीसा भस्म को दो तोले अर्क गिलोय और एक तोला शहद के साथ लेने से जुकाम आराम होता है।

३—एक मात्रा इस सीसा भस्म को बिहीदाना के लुआब के साथ खाने से सुजाक आराम होता है। (चिकित्सा चन्द्रोदय)।

*सीसा भस्म करने की आसान विधि*—कपड मिट्टी किये हुए मिट्टी के कूण्डे में शुद्ध सीसे को डाल कर आग पर चढावें, जब पिघल कर सीसा खूब तप्त हो जावे तब आक की जड के डण्डे से उसे जल्दी जल्दी घोटें, अथवा घीगुवार की जड के डण्डे से घोटें और नीचे तेज आँच जलती रक्खें। ऐसा करने से पाव भर सीसे की दोपहर की आच में भस्म तैयार हो जायगी। इस भस्म को कपडे में छान ले। इस हालत में भी कई वैद्य लोग इसका उपयोग करते हैं।

मगर यदि इसे विशेष प्रभावशाली बनाना हो तो इस भस्म में से पाच तोला भस्म लेकर उसे ढाई तोला अफीम के साथ मिला कर आक के दूध में अथवा आक के पत्तों के रस में खरल करें। फिर उसकी टिकिया बनाकर धूप में सुखा लें और उन टिकियाओं को सराब सम्पुट में रख कर वराह पुट में फूँक दें। इस प्रकार दो वार, चार बार या छ बार फूँकें। ऐसा करने से यह भस्म भी बहुत प्रभावशाली हो जाती है।

*नागेश्वर बनाने की विधि*—एक सेर शुद्ध सीसे को मिट्टी के बर्त्तन में रख कर आग पर चढावें। जब वह गल जाय तब उस पर इमली की अन्तर्छाल और पीपल की अन्तर्छाल का चूर्ण थोडा थोडा भुरभुराते जॉय और लोहे की कल्छी से चलाते जावें ऐसा करते करते जब उसकी भस्म हो जाय तब उसके बराबर शुद्ध मैनसिल लेकर दोनों को खरल में डाल कर काजी के साथ खूब घोटकर टिकिया बना लें और इन टिकियाओं को सरावसम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार साठ गजपुट में फूँकने पर नागेश्वर तैयार हो जाता है।

*नाग रसायन*—सीसे की भस्म चार तोले, सुवर्णमाक्षिक भस्म २ तोले, ताम्रभस्म एक तोला, रूपामाखी भस्म १ तोला, कान्त लोह भस्म १ तोला, शतपुटी अभ्रक भस्म १ तोला और स्फटिक मणि की भस्म १ तोला, इन सातों भस्मों को त्रिफला के काढे में घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लें, उसके पश्चात् इन टिकियाओं को सराव सम्पुट में रख कर तीस उपले के कण्डों की आच में फूँक दें। इस प्रकार तीस वार त्रिफले के काढे में घोट कर तीस ही वार सराव सम्पुट में इसे फूँकें। इसके बाद सराव में से इस भस्म को निकाल कर, ग्यारह तोले त्रिकुटा ( सोंठ, मिरच, पीपर ) का चूर्ण और ग्यारह तोले बायबिडग के चूर्ण के साथ इस औषधि को खरल में घोटकर शीशी में भर लें।

इस नाग रसायन की मात्रा दो से चार रत्ती तक की है। इसको शहद, घी अथवा भिन्न २ अनुपानों के साथ लेने से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। खास कर सब प्रकार की वात व्याधियाँ, धनुर्वात, कफ-रोग, बहुमूत्र, खासी, क्षयरोग, पाण्डु रोग, श्वास, शीतज्वर, आमरोग, सग्रहणी, जलविकार, ( भिन्न भिन्न स्थानों के पानी से होनेवाले विकार ) मन्दाग्नि, शोथ इत्यादि रोगों में उचित अनुपान के साथ देने से यह काफी लाभ पहुँचाता है। लेकिन वमन विरेचन से पेट को साफ करके इसका सेवन करना चाहिए।

अशुद्ध सीसा भस्म के विकारों की शाति—एक रत्ती सुवर्ण भस्म, एक तोला मिश्री और एक तोला बडी हरड, तीनों चीजों को मिला कर तीन दिन तक दोनों टाइम खाने से अशुद्ध नाग भस्म के विकार शान्त होते हैं।

मात्रा—सीसा भस्म की मात्रा चार चावल से दो रत्ती तक होती है।

*उपयोग*—

*अजीर्ण*—सोंठ और सौंफ के चूर्ण के साथ सीसा भस्म को खाने से अजीर्ण मिटता है।

*गुल्म रोग*—सोंठ और सचर नोन के चूर्ण के साथ सीसा भस्म को लेकर ऊपर से मकोय का रस पीने से गुल्म रोग मिटता है।

*ज्वर*—काली मिरच और बताशे के साथ नागभस्म का सेवन करने से नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर में लाभ होता है।

*कामोद्दीपन*—मिश्री, जायफल और पीपर के चूर्ण के साथ नाग भस्म को लेने से बल और काम-शक्ति बढती है।

*सिरदर्द*—सोंठ के चूर्ण और पुराने गुड के साथ नागभस्म को खाने से सिर का दर्द और कमर का दर्द मिटता है।

*वमन*—सोंठ और पुराने गुड के साथ नागभस्म को लेने से वमन शान्त होती है।

*तिल्ली और यकृत के रोग*—नागभस्म को शहद और पीपल के साथ लेने से तिल्ली और यकृत के रोग मिटते हैं।

*प्रदर*—पीपल क चूर्ण और काकमाची के रस में नागभस्म को लेने से घोर प्रदर रोग मिटता है।

*प्रमेह*—गिलीय के स्वरस और शहद के साथ अथवा हल्दी आवला और शहद के साथ नागभस्म को लेने से सब प्रकार के प्रमेह मिटते हैं।

---

# सुरिंद (गेवा)

*नामः*—

मराठी—सुरिन्द, सूरन, गेवा, फुगली, हुरा। बम्बई—गेवा, गऊर, गगवा, गेरिया, गोरिया। कनाडी—हरो, हुरा। उड़िया—गुन। तैलगू–तिल्ल। तामील–तिल्ले चेदि। इंग्लिश—Blinding tree (ब्लाइडिंगट्री) लेटिन—Excaecaria Agallocha (एक्सीकेरिया एगेलोचा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का विषैला और हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसके हर एक अङ्ग में सफेद रङ्ग का बहुत तीक्ष्ण स्वादवाला दूधिया रस रहता है। इसके पत्ते सफेद कूडे के पत्तों के समान मगर उनसे कुछ मोटे, लम्बे और मुलायम रहते हैं। पत्तों के डखल लम्बे और लाल रंग के रहते हैं। इसके फूल पीले और सुगन्धित, छाल ऊबलखाबड़ और लकड़ी सफेद और मुलायम होती है। इसकी जड के टुकडे नरम, हलके, लाल और बूच (काग) की लकड़ी के समान होते हैं। इनको पानी में डालने से ये पानी का शोषण कर लेते हैं मगर बाहर से सूखे ही नजर आते हैं। चाकू से चीरा लगाने पर इनका शोषण किया हुआ पानी बाहर निकल आता है। इस वृक्ष की छाल और इसका दूध औषधि प्रयोग में काम आता है। यह वनस्पति सुन्दर बन, बर्मा और पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

इसका दूधिया रस जो कि इसकी छाल से निकलता है ताजी हालत में बहुत तीक्ष्ण और आँखों को हानि पहुँचाने वाला होता है, इसी लिए इसको अंग्रेजी में ब्लाइडिंग ट्री कहते हैं। यह तीव्रविरेचक और त्वचा पर लगाने से त्वचा में दाह पैदा करनेवाला होता है। स्वय विषैला होने पर भी यह दूसरे विषों को नष्ट करता है। बिच्छू के डंक पर इसका लेप करने से वेदना कम हो जाती है। रक्तपित्त, वृण और दूसरे चर्म रोगों पर इसको तेल में मिलाकर लगाते हैं और इसके पत्तों के काढ़े से वृणों को धोते हैं। खाँसी में इसका दुध चावल के आटे में मिलाकर गोली बाँधकर दिया जाता है। आँख में अगर यह चला जाय तो इसकी वेदना को शान्त करने के लिए आँखों में दही आँजना चाहिए और दही की पट्टी आँखों पर बाँधना चाहिए। सर्पविष को दूर करने के लिए इसकी छाल का रस दिया जाता है।

हिन्दू चिकित्सक इसके पत्तों का काढा मृगी रोग को दूर करने के लिए देते हैं यह दिन में दो बार चौथाई चाय के प्याले की मात्रा में दिया जाता है। इसका काढ़ा व्रणों के ऊपर भी लगाया जाता है।

इसकी जडों का नीचे का हिस्सा जो मुलायम, हलका, लाल और काग की तरह होता है। यह पश्चिमी

भारत के औषधि विक्रेताओं के द्वारा "तेजवल" के नाम से विकता है और कामोद्दीपक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

फ़िजी के अन्दर यह वनस्पति गलित कुष्ठ की चिकित्सा में काम में ली जाती है। वहाँ पर इसको काम में लेने का तरीका भी बड़ा विचित्र है। पहले रोगी का शरीर हरे पत्तों से रगड़ा जाता है फिर उसको एक छोटे कमरे में ले जाकर उसके हाथ, पैर बाँध देते हैं और इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों से थोड़ी आग जलाते हैं जिससे गहरा धुआँ निकलता है, उस अग्नि से कुछ ऊपर उस बीमार को टाँग देते हैं और कुछ घण्टों तक उस जहरीले धुएँ में उसे रखते हैं। इस दशा में रोगी को वेहद वेदना और त्रास होती है और वह वेहोश हो जाता है। खूब धुआँ लग जाने पर उसको वहाँ से निकालते हैं और उसके शरीर पर जमे हुए क्षार को छील छीलकर निकालते हैं जिससे उसकी चमड़ी भी छिल जाती है। इस चिकित्सा से गलित कुष्ठ के कुछ केस आराम हो जाते हैं मगर बहुत से इस अग्नि परीक्षा में ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं।

---

# सुपारी

*नामः—*

संस्कृत–पूगीफल, पूगी, मुद्वेग, घोण्टाफल, गुवाक इत्यादि। हिन्दी–सुपारी। बङ्गला–सुप्पारी, गुआ। गुजराती–सोपारी, होपारी, पोफल। मराठी–सुपारी, पुङ्ग, पोफली। उर्दू–सुपारी। फारसी–पोपल, गिर्दचोब। इंग्लिश–Betel Nut Tree (वेटल नट ट्री)। लेटिन–Areca Catechu (एरका कटेचू)।

वर्णन—सुपारी के वृक्ष ताड़ और नारियल की जाति के बहुत ऊँचे और एक दम सीधे होते हैं। इसका वृक्ष खम्भे के समान एकदम सीधा चला जाता है। इसके पत्ते बड़े २ नारियल के पत्तों के समान होते हैं। इसके ऊपर सुपारी के फल लगते हैं इन फलों को छीलने से भीतर से सुपारी निकलती है सुपारी जहाजी, मानकचन्दी, श्रीवर्द्धिनी इत्यादि अनेक प्रकार की होती है। सुपारी के वृक्ष बंगाल, आसाम, सिलहट, पश्चिमीघाट, मैसूर, कनारा, मलाबार इत्यादि कई प्रान्तों में होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सुपारी भारी, शीतल, रूखी, कसैली, कफ पित्त नाशक, मोह कारक, दीपन, रुचिकारक और मुख को शुद्ध करनेवाली होती है। कच्ची सुपारी भारी, अभिष्यन्दि मन्दाग्निकारक और दृष्टिशक्ति विनाशक होती है। औटाकर तैयार की हुई सुपारी जिसका मध्यभाग दृढ है उत्तम और त्रिदोषनाशक होती है।

सुपारी प्रथम अर्थात् कच्ची अवस्था में विष के समान हानिकारक होती है, मध्यम अवस्था में भेदक और दुष्पच्य होती है और सूखी हुई हालत में अमृत के समान उपकारी और रसायन होती हैं। इस

कारण प्रथम और द्वितीय अवस्था को छोडकर इसको हमेशा तृतीय अर्थात् सूखी अवस्था में ग्रहण करना चाहिए।

सुपारी मोहकारक, स्वादिष्ट, रुचिजनक, कसैली, रूखी, सारक, मधुर, भारी, पथ्य, दीपन, किञ्चित् चरपरी, मुँह के जायके को सुधारनेवाली तथा वमन, क्लेद, त्रिदोष, मल, वात, कफ, पित्त और दुर्गन्ध को दूर करनेवाली होती है। कच्ची सुपारी कण्ठशोधक, अभिष्यन्दी, सारक, भारी, दृष्टिशक्ति नाशक, मन्दाग्नि कारक तथा रक्तविकार, मुँह की दुर्गन्ध, पित्त आम, कफ, आध्मान और उदररोग का नाश करती है। सूखी हुई सुपारी रुचिकारक, पाचक, रेचक, स्निग्ध, बादी तथा कण्ठरोग और त्रिदोष का नाश करनेवाली होती है। विना पान की सुपारी खाने से सूजन और पाण्डुरोग उत्पन्न होता है।

आन्ध्र देश में उत्पन्न होनेवाली सुपारी पचने में मधुर, किञ्चित अम्ल, कसैली तथा कफ वातनाशक और मुख में जडता पैदा करनेवाली होती है। चम्पापुर की सुपारी पाचक, अग्निदीपक, बलवर्द्धक, रसयुक्त और कफनाशक होती है। चन्दापुरी सुपारी रस में मधुर, चरपरी, कसैली, रुचिकारक, स्वादिष्ट, अग्नि-दीपक, पाचक और कफनाशक होती है। गुहागरी सुपारी मधुर, कसैली, हलकी, चरपरी, पाचक, विशद, मलरोधक तथा आफरा और वात को नष्ट करनेवाली होती है।

सुपारी के पेड का गोंद मोहजनक, शीतल, भारी, पचने में उष्ण, पित्तकारक, चरपरा, खट्टा और वातनाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से सुपारी पाचक, सकोचक, मूत्रल, हृदय को शक्ति देनेवाली, ऋतुश्राव नियामक और आँखों की सूजन, भ्रम, पुरातन प्रमेह और पीब को नष्ट करनेवाली होती है।

सुपारी के फल का चूर्ण ५ रत्ती से लेकर एक माशे तक की मात्रा में निर्बलता से होनेवाले अतिसार में तीन २ चार २ घण्टे के अन्तर से दिया जाता है। मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में भी यह बहुत लाभदायक होता है। इसमें कामोद्दीपक तत्व भी रहते हैं। इसके सूखे फल के टुकडों को चूसने से शरीर में उत्तेजक और आनन्ददायक प्रभाव होता है।

सुपारी स्नायुजाल को शक्ति देनेवाली और ऋतुश्राव नियामक होती है और इसका लोशन एक सकोचक द्रव्य की तरह आँखों में डालने के काम में लिया जाता है। यह आँतों की शिकायत और खराब व्रणों के अन्दर भी उपयोग में ली जाती है।

सुपारी के कोमल पत्तों का रस निकालकर मर्दन करने से कमर की स्नायुपीडा मिटती है और इसकी जड का काढा होठ के व्रण को मिटानेवाला माना जाता है।

सुपारी के चूर्ण का मंजन करने से अथवा इसके छोटे २ टुकड़े मुँह में रखने से मसूड़ों से रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है। इसके चूर्ण की पोटली बाधकर योनि में रखने से योनि से पानी का बहना बन्द हो जाता है। दूध के साथ सुपारी के सवा तोले चूर्ण की फक्की देने से पेट के गोल और चपटे कृमि ( Tape worms ) मर जाते हैं। इसके चार मासे चूर्ण को मक्खन के साथ देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

सीलोन के अन्दर सुपारी को घिसकर जखम ऊपर लगाया जाता है। यह मसूढ़ों को शक्ति देनेवाली मानी जाती है। पशुओं के पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिए भी दी यह जाती है।

मलाया की स्त्रियाँ छोटी उमर में गर्भ रह जाने पर सुपारी के हरे और कोमल पत्तों को गर्भघातक औषधि की तरह काम में लेती हैं। चीन में सुपारी पौष्टिक, सङ्कोचक और कृमिनाशक मानी जाती है। इसके छोटे टुकड़ों का काढा बना कर आन्तों की अनेक प्रकार की शिकायतों को दूर करने के लिए पिलाया जाता है।

कम्बोडिया में सुपारी के पत्ते खाँसी को मिटाने के लिए पिलाये जाते हैं और कटिवात को दूर करने के लिए इनका बाहरी लेप किया जाता है। इसका फल अफीम के साथ अतिसार को दूर करने के लिए दिया जाता है और इसकी जड़ यकृत की बीमारियों में उपयोगी मानी जाती है।

कोमान के मतानुसार कोमल सुपारी छोटी मात्रा में मृदु विरेचक होती है।

*उपयोगः—*

*वमन*—सुपारी और हल्दी के चूर्ण में शक्कर मिलाकर फक्की देने से वमन बन्द होती है।

*क्षौद्र प्रमेह*—सुपारी और खैर के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से क्षौद्र प्रमेह मिटता है।

*उपदंश*—सुपारी का चूर्ण भुरभुराने से उपदंश का घाव मिटता है।

*मुखपाक*—सुपारी और बड़ी इलायची की भस्म को मुँह में भुरभुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

*रजरोग*—सुपारी का पाक खाने से स्त्रियों के योनि और रज सम्बन्धी बहुत से रोग मिटते हैं।

---

# सुहागा।

*नामः—*

संस्कृत—टङ्कणक्षार, लोह द्रावी, स्वर्ण पाचक, सौभाग्य इत्यादि। हिन्दी-सुहागी, सुहागा। बङ्गला-सोहागा। मराठी—सागी खार, टांकण खार। गुजराती—टङ्कण खार, टकण,फूलियो। पंजाबी—सुहागा। तेलगू-वोलिगारमु। फ़ारसी-तीगार। अरबी-जवहुल बूरक। इंग्लिश-Borax (बोरेक्स)। लेटिन—Soda Biboras (सोडा बाइबोरास)।

वर्णन-सुहागा यह एक खनिज द्रव्य है। यह कच्ची और अशुद्ध हालत में नैपाल से बहुत बड़ी तादाद में आता है और फिर यहाँ पर तैय्यार किया जाता है। यह सफेद रंग का, गंध रहित और स्वेदाः होता है। इसका स्वाद नमकीन या खारा होता है। सुनार लोग इसको सोना गलाने के काम में लेते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सुहागा कटु, उष्ण तथा कफ, स्थावर विष, खाँसी और श्वास को दूर करनेवाला होता है।

भाव प्रकाश के मत से सुहागा अग्निवर्द्धक, रूखा, कफनाशक और वात, पित्त को पैदा करनेवाला होता है।

सुहागा तीक्ष्ण, द्रावण, धातु को गलानेवाला, भेदक तथा विष, ज्वर, गुल्म, आम, शूल, वात और कफ को नष्ट करता है।

सुहागा भेदक, रुक्ष, कटु, अग्निदीपक, पित्तजनक, उष्ण, वातवर्द्धक, तिक्त, तीक्ष्ण, खारा, धातु को पतला करनेवाला तथा ज्वर, वात, कफ, जङ्गम विष, स्थावर विष, वमन, वात रक्त, खाँसी और श्वास को हरनेवाला होता है।

*सुहागे को शुद्ध करने की विधि*—सबसे पहले सुहागे को लेकर काजी में छोड दें, एक रात के पश्चात् निकाल कर रौद्र यत्र में पचावे फिर उसे मनुष्य के मूत्र में डालकर गौमूत्र में डाले, फिर सायकाल को निकाल कर जम्भीरी नीम्बू के रस में डाले, उसमें से निकाल कर नारियल के पात्र में रखकर कालीमिर्च के चूर्ण से युक्त शीतल जल से धोवे, इस क्रिया से सुहागा शुद्ध हो जाता है। ( शा० नि० )

मगर इसको शुद्ध करने की सरल विधि इसको अङ्गारे पर रखकर फूला पाड लेने की है, इस क्रिया से सुहागा सब रोगों में देने योग्य शुद्ध हो जाता है।

सुहागा कृमिनाशक, ऋतुश्राव नियामक और मूत्रल होता है।

सुहागा हलका कृमिनाशक होता है। इसको बडी मात्रा में लेने से दस्त और वमन होते है। पेट के अन्दर आन्तों में यह बहुत जल्दी घुल जाता है मगर आन्तों की सड़ाइध पर इसका कुछ असर नहीं होता। यह पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है, निकलते समय यह पानी और यूरिया ( urea ) को बढाता है। सुहागे को देने से पेशाब अल्केलाइन होता है, उसमें एसिड की मात्रा कम होती है। मूत्र पिण्ड के कृमियों को भी यह नष्ट करता है। थोडी मात्रा में सुहागी को देने से यह पेशाब को स्वच्छ करती है। लगातार इसको छोटी मात्रा में लेने से यह पेशाब में एलब्यूमिन को बढाती है।

मज्जातन्तुओं के ऊपर सुहागे का उपशामक असर होता है। इसके लेने से मासिक धर्म का परिमाण बढता है। यह गर्भाशय के सकुचित होने की क्रिया को बढ़ाता है।

सुहागे के पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं। स्वर भग रोग में इसकी गोली बनाकर मुँह में रखने से बहुत लाभ होता है। सुहागी और काली मिरच मिलाकर लगाने से मसूढों के क्षत अच्छे होते हैं।

पेट में गैस पैदा होने से जो अग्निमाद्य हो जाता है उसमें सुहागा बहुत लाभदायक होता है। गन्दे पेशाब को भी यह साफ करता है। अतिसार और रक्तातिसार में इसका उपयोग सन्देहात्मक है। प्रसूति के

समय पीड़ा घटाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। मृगी रोग में इसको ब्रोमाइड के साथ लेने से लाभ होता है।

उपयोगः—

फोड़े फुन्सी—सुहागे को जल में घोलकर उस जल से फोड़े फुन्सियों को धोने से वे अच्छे हो जाते हैं।

तिल्ली की वृद्धि—घीगुवार के गूदा पर शुद्ध सुहागा भुरभुरा कर खाने से तिल्ली घटती है।

मुँह के छाले—बच्चों के मुँह में जो सफेद छाले हो जाते हैं उन पर सुहागा भुरभुराने से वे आराम हो जाते हैं। इसको जल में घोलकर कुल्ले करने से मुखपाक मिटता है।

दाद—नीम्बू के रस में सुहागा मिलाकर लगाने से दाद आराम होता है।

मंदाग्नि—भोजन के एक घन्टे पश्चात् पाँच रत्ती से एक माशा तक सुहागा थोड़े जल के साथ लेने से मन्दाग्नि मिटती है।

अम्लपित्त—पाँच रत्ती फुलाया हुआ सुहागा कुछ दिनों तक खाने से अम्लपित्त मिटता है।

रक्त का बहना—सुहागे के जल में कपड़ा तर करके घाव पर बाँधने से रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है अथवा सुहागे के चूर्ण को भुरभुराने से भी रुधिर का बहना बन्द हो जाता है।

गजचर्म—जिस रोग में चमड़ी मोटी पड़ जाय, उसका रङ्ग बदल जाय और खुजली बहुत चलने लगे वहाँ पर सुहागे का पानी अथवा सुहागे का लेनाव लगाने से लाभ होता है।

खाँसी—बच्चों की खाँसी में फुलाये हुए सुहागे को रत्ती दो रत्ती की मात्रा में थोड़े से दूध के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

योनि के फोड़े फुन्सी—योनि और मूत्रनाली के फोड़े फुन्सियों को मिटाने के लिए सुहागे के जल का प्रयोग उत्तम होता है।

मासिक धर्म की रुकावट—सुहागे का प्रयोग करने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है।

प्रसूति कष्ट—प्रसूति के समय का कष्ट मिटाने के लिए अपामार्ग की जड़ के क्वाथ में सुहागा डालकर पिलाना चाहिए।

रक्त प्रदर—गर्भाशय से बहते हुए रक्त को रोकने के लिए सुहागे के जल में कपड़ा तर करके योनि के भीतर रखना चाहिए।

स्तन के घाव—स्त्रियों के स्तन के घाव सुहागे के पानी से धोने से अच्छे हो जाते हैं।

दंतपीड़ा—सुहागे को पीसकर उसको थोड़े से मोम में मिलाकर दाँत की कोचर में रखने से दाँत की पीड़ा मिटती है।

*मंजन*–फुलाये हुए सुहागे में मिश्री मिलाकर उसका मजन करने से दाँत दृढ होते हैं।

*कर्णरोग*–सुहागा और सिरका मिलाकर गर्म करके कान में डालने से कान के कीड़े मरते हैं।

*अण्डकोषों की सूजन*––दो रत्ती फुलाये हुए सुहागे की पुराने गुड में गोली बनाकर उसको प्रातःकाल खाकर ऊपर से थोडा घी पी लें। ऐसा कुछ दिन करने से अण्डकोषों की सूजन मिटती है। पथ्य में बिना नमक का भोजन करना चाहिए।

*सर्पविष*––सुहागे को पानी के साथ पिलाने से सर्पविष में लाभ होता है। स्थावर विषों के विकार को शान्त करने के लिए सुहागे को घी में मिलाकर देना चाहिए।

*नारू*––(१) सुहागे को गिलोय के रस में मिलाकर पीने से नारू मिटता है।

( २ ) तीन माशे फुलाये हुए सुहागे में तीन माशे हींग मिलाकर चूर्ण करके सात पुडिया बना लेना चाहिए। ये सातों पुडिया सात दिन तक खाने से नारू मिट जाता है।

( ३ ) दस माशा सुहागा गुलाब के फूलों के तेल के साथ तीन दिन में खाने से और पथ्य में घी इत्यादि स्निग्ध पदार्थों को लेने से नारू गल जाता है।

( ४ ) जहरी कुचले को गाढा २ घिसकर उसकी बताशे के बराबर बून्द नारू पर डाले और उस पर एक चुटकी सुहागा और एक चुटकी सिन्दूर डालकर ऊपर से अरण्डी के पत्ते रखकर पट्टी चढ़ा दें। ऐसी तीन दिन तक तीन पट्टी चढाने से नारू अच्छा हो जाता है।

*दमा*–तीन तोले फुलाये सुहागे को चार तोले शहद में मिलाकर उसमें से तीन उगली भर अवलेह प्रतिदिन चाटने से दमा मिटता है।

*तिल्ली*—एक भाग भुना हुआ सुहागा और तीन भाग राई को महीन पीसकर एक २ माशे की मात्रा में दिन में दो बार लेने से नारू गल जाता है।

*मुँह की झांई*–सुहागे को चन्दन के साथ पीसकर मुँह पर लेप करने से मुँह की झाई मिटती है।

*सर्पविष*–१॥। तोले सुहागे को फुलाकर घी में मिलाकर पिलाने से सर्पविष उतरता है। बच्छनाग के विष में भी यह लाभ पहुँचाता है।

---

# सुरिंजान

*नामः*—

हिन्दी यूनानी–सुरिंजान। लेटिन—Colchicum Variegatum (कोलचिकम व्हेरिगेटम)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है जो कश्मीर में तथा बड़ी तादाद में ईरान में पैदा होता है। इसके कन्द के टुकडे ईरान से भारतवर्ष में आते हैं। इसकी दो जातिया होती हैं एक सुरजान

तल्ख ( कड़ुवा ) और दूसरी सुरिंजान शीरीं ( मीठा )। इसमें से सुरिंजान तल्ख विशेष रूप से औषधि के काम में आता है। यह बाहर से भूरे रंग का और भीतर से सफेद रंग का होता है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसकी जड़ खराब स्वादवाली, कड़वी, मृदुविरेचक, कामोद्दीपक, सूजन को बिखेरने वाली, तथा मस्तिष्क की गरमी को दूर करनेवाली होती है। पुराने बवासीर के मस्सों पर इसका लेप करने से उनकी वेदना शान्त होती है। मस्तकशूल, गठिया, संधिवात और तिल्ली तथा यकृत के रोगों में यह बहुत मुफीद है।

सुरंजान की क्रिया बिलकुल 'कोलचिकम' के समान होती है। यह पाचननलिका को प्रत्यक्ष उत्तेजना देता है। जिससे वमन और दस्त होते हैं। यकृत को उत्तेजना देकर यह पित्त संचालन की क्रिया को व्यवस्थित करता है। मूत्रपिण्ड के लिए भी यह उत्तेजक है इसलिए पेशाब की मात्रा को बढ़ाता है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से इसका नशीला प्रभाव होता है और शरीर में जलन पैदा होती है। छोटी मात्रा में इसको लेने से यह जीवन विनिमय क्रिया को सुधारता है। इसके साथ में सोंठ, लवंग इत्यादि सुगन्धित पदार्थ देने से इसकी ग्लानि दूर हो जाती है।

वातरक्त रोग के अन्दर यह एक खास औषधि मानी जाती है। शरीर की जीवन विनिमय क्रिया बिगड़ने से कभी कभी शरीर के जोड़ों में क्षार जम जाता है और उससे सूजन होकर असह्य वेदना होती है, रक्त-वाहिनियों में मोटापन आने से हृदय अशक्त होकर फूलता है और पेट में सूजन आ जाती है, पेशाब गाढ़ा होने लगता है और उसमें लालरंग का क्षार बहुत मात्रा में जाने लगता है। ऐसी स्थिति में सुरंजान तल्ख देने से अच्छा लाभ होता है। इस औषधि को पूरी मात्रा में देने से यह तुरत अपना प्रभाव बतलाती है, मगर यदि दो तीन बार देने पर भी इसका प्रभाव दिखलाई न दे तो फिर इस औषधि को देना बन्द कर देना चाहिए। वातरक्त में तरह तरह के चर्म रोग भी होते हैं उनमें भी यह औषधि लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ को पानी अथवा शराब में पीस कर उसमें केशर मिलाकर जोड़ों की सूजन पर लेप करते हैं। आमवात में भी यह औषधि दी जाती है मगर इस रोग की यह खास दवा नहीं है। सुजाक के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है।

---

# सुरमा

नामः—

संस्कृत—सौवीरक, पार्वतेय, स्रोताजन, सौवीराञ्जन, अञ्जन इत्यादि। हिन्दी—सुरमा, अंजन। बङ्गला—सुर्मा, अञ्जन। मराठी—काला सुरमा, सफेद सुरमा। गुजराती—सुरमो। तेलगू—सौवीराञ्जन।

फारसी—सुर्म अस्फ़हानि। अंग्रेजी—Sulphuret of Antimony ( सल्फ्यूरेट ऑफ एण्टिमनी )। लेटिन—Antimonai Sulphuretum ( एण्टीमोनाई सल्फ्यूरेटम )

वर्णन—सुरमा हिमालय और पंजाब की कई खदानों से निकलता है तथा कन्दहार और इस्पहान से भी आता है। कुछ लोगों के मत से यह तीन प्रकार का होता है, काला, सफेद और लाल। लाल सुरमे की डली में लोहे के रवों के समान चमकदार रवे रहते हैं। इसको तोड़ने से भीतर से काला और घिसने पर लाल हो जाता है। काला सुरमा कठोर, भारी, चमकदार और पर्तवाला होता है। इसकी चमक बहुत तेज और शीशे के समान होती है।

सुर्मे के बदले में वेचनेवाले गलीना दे देते हैं। यह भी सुरमे के ही समान होता है। इसलिए असली सुरमा खरीदने से लिए सुरमा इस्पहानी लेना चाहिए।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से काला सुरमा स्वादिष्ट, नेत्रों को हितकारी, कफपित्त नाशक, कसैला, लेखन, स्निग्ध, मलरोधक, वमन निवारक, विष नाशक, हिचकी को दूर करनेवाला, क्षय रोग को हरनेवाला, रक्तदोष निवारक और शीतल होता है।

सुरमा नेत्रों की ज्योति को बढाने और नेत्र रोगों को नष्ट करने के लिए बहुत उपयोग में लिया जाता है। इसमें कई औषधियाँ मिलाकर भिन्न २ प्रकार से इसका अञ्जन तैयार किया जाता है। ममीरा और नीम के योग से तैयार किया हुआ सुरमा नेत्र रोगों के लिए बहुत उपयोगी होता है।

---

# सूरजमुखी

*नामः—*

संस्कृत—सूर्य्यमुखी, सूर्य्यावर्त्त, सुवर्च्चला। हिन्दी—सूरजमुखी, हुरहुजा। गुजराती—सूरजमुखी। मराठी—सूर्य्यफूला, ब्रह्मोका। बङ्गाल—सूरजमुखी। उर्दू—सूरजमक्खी। फारसी—आफताबी, गुले आफताब परस्त। अरबी—अर्ह्रवान। तेलगू—आदित्य भक्तिचेट्टू। इंग्लिश—Lady Eleven ( लेडी इलेव्हन )। लेटिन—Helianthus Annuus ( होलीएन्थस एन्युएस )।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी पौधा होता है। इसके फूल सूर्योदय होने के साथ खिलते हैं और सूर्यास्त होने के साथ २ मुन्द जाते हैं। इसकी दो तीन तरह की जातियाँ होती है। सफेद फूलवाली, नीले फूलवाली, पीले फूलवाली इत्यादि। पीले फूलवाली जाति का वर्णन हुरहुर के प्रकरण में आगे दिया जावेगा।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से इसका फूल चरपरा, उष्ण, कृमिनाशक, ज्वर को दूर करनेवाला तथा कफ, चर्म-

इसकी जड का कन्द चीन के अन्दर बहुत उपयोग में लिया जाता है। वहाँ यह कफनिस्सारक, शान्ति-दायक और बाधानाशक माना जाता है। यह यकृत के रोग, रक्तरोग और फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों में उपयोग में लिया जाता है। मलाया में यह सुजाक के अन्दर उपयोग में लिया जाता है। झूलू लोग इस वनस्पति को जवान लड़कियों को होनेवाले हिस्टीरिया रोग में देते हैं।

---

# सूर्य-किरण

*नामः—*

संस्कृत—सूर्यरश्मि। हिन्दी—सूर्य-किरण। अंग्रेजी—Sunbeam (सनबीम)।

वर्णन—सूर्य की किरणों का जो संसार को प्रकाश देती हैं परिचय देने की आवश्यकता नहीं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

सूर्य की किरणें सारे संसार को प्रकाश देती हैं, प्रकाश के साथ साथ वह उन जीवन-तत्वों की भी वर्षा करती हैं जिनसे मनुष्य, सारा प्राणी संसार, वनस्पतिसंसार तथा सारा जगत्, जीवन और स्वास्थ्य को ग्रहण करता है।

*इतिहास—भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में सूर्य के प्रकाश का अत्यन्त महत्व माना गया है और* यही कारण है कि वेदों में सूर्य-पूजा को खास महत्व दिया गया है। मिश्र, ईरान, यूनान और रोम की सभ्यताओं में भी सूर्य-पूजा प्रचलित थी। ईसा के चार सौ वर्ष पहले पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के मूलजनक हिपाक्रेटस ने ग्रीक द्वीप—कॉस में सूर्य-चिकित्सा का उपयोग किया था। प्राचीन यूनानी और रोमन लोगों ने पर्वतों पर सूर्य-चिकित्सालय बनवाये थे।

मनुष्य शरीर में होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों को सूर्य-किरणों के द्वारा किस प्रकार आराम किया जा सकता है, इसका ज्ञान सूत्र रूप में प्राचीन भारत के चिकित्सा शास्त्रियों को अवश्य था, मगर आधुनिक युग में इस चिकित्सा को व्यवहारिक रूप देने का श्रेय सुप्रसिद्ध डेनिश डाक्टर 'नाईल्स फ़िन्सेन' को है। ईसवी सन् १८९३ में इस डाक्टर ने सूर्य-किरणों के महत्व को प्रकट किया। ईसवी सन् १८९५ में उन्होंने सूर्यकिरणों से एक क्षय के रोगी को आराम किया।

सन् १९०३ में डाक्टर रॉलियर ने स्विट्झरलैण्ड के आल्पस पर्वत पर लेसीन नामक स्थान में सूर्य किरण चिकित्सा का काम आरम्भ किया। डाक्टर रॉलियर ने नैसर्गिक सूर्यप्रकाश से कई रोगों की सफल चिकित्सा की।

डा० फिन्सेन के उक्त युग परिवर्तनकारी आविष्कार के पश्चात् इस चिकित्सा-पद्धति में आश्चर्यकारी उन्नति हुई। धीरे-धीरे अनुसन्धान से यह पता चला कि आधुनिक पारद वाष्प लैम्प (Mercury Vapour) टंगस्टेन लैम्प आदि में प्राकृतिक सूर्यप्रकाश से भी पराकासनी किरणें (Ultra-violet

Rays ) अधिक तादाद में रहती हैं। ये सूर्य किरणों को अदृश्य रूप से ग्रहण करती हैं। प्राकृत सूर्य-किरणों से भी इनमें रोग प्रतिहारक शक्ति अधिक रहती है इसके अतिरिक्त उक्त विभिन्न प्रकार के लैम्प आवश्यकतानुसार भिन्न २ परिमाणों में इन किरणों को निकाल सकते हैं। अर्थात् रोग को दूर करने के लिये जिस परिमाण में किरणों की आवश्यकता होती है उतने ही परिमाण में इन लैम्पों से प्राप्त की जा सकती है।

अभी तक इस बात का पता नहीं लग पाया कि शरीर पर ये किरणें किस प्रकार काम करती हैं। मगर इतना निश्चित रूप से मालूम हो गया है कि शरीर पर ये अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। इन अदृश्य पराकासनी किरणों की कार्य-शक्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के मत हैं। एक मत यह है कि स्नायुमण्डल द्वारा ये अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। दूसरा मत यह है कि ये रक्त में शोषण हो जाती हैं और उसी के द्वारा सारे शरीर पर अपना प्रभाव पहुँचाती हैं। कुछ भी हो यह निश्चित है कि इनमें आश्चर्यजनक शक्ति हैं और प्राणीजीवन में ये नवजीवन और नव-शक्ति का सचार करती हैं।

*पराकासनी किरणों का रक्त पर प्रभाव*—इन अदृश्य सूर्य-किरणों का रक्त पर ठीक ठीक क्या प्रभाव पडता हैं इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसन्धान अभी जारी हैं, पर इतना निश्चित रूप से अनुभव में आ चुका है कि रक्ताभिसरण की खराबियां और उनसे होनेवाले रोगों जैसे एनीमिया ( पाण्डु रोग ) और ल्यूकोमिया को अच्छा करने में ये बहुत काम करती हैं। बच्चों के सूखा रोग में भी इनका बडा उपयोग होता है। इस चिकित्सा से सूखा रोग वाले बच्चों को सुख से नींद आने लगती है, उनकी भूख बढ जाती है, उनके शरीर में नवजीवन का सचार होने लगता है, क्योंकि इन किरणों के प्रयोग से उनके रक्त में केलसियम और फास्फोरस की वृद्धि हो जाती है। उनका वजन और ऊँचाई बढने लगती है। उनकी हड्डियाँ भी मजबूत हो जाती हैं। यह बात एक्सरे की परीक्षा से प्रत्यक्ष हो गई है। कुछ प्रसिद्ध चिकित्सकों का मत है कि जिन स्त्रियों को शीघ्र प्रसूति होनेवाली है उनको इन किरणों का हलका स्नान करा देना चाहिए। क्योंकि इन किरणों से केलसियम के तत्व की वृद्धि होती है जो कि इस अवस्था में बहुत आवश्यक है।

*क्षय रोग और पराकासनी* (Ultra Violet) *किरणें*—फेफडों के क्षय को छोडकर और सब प्रकार के क्षय रोगों में ये किरणें, चाहे वे प्राकृतिक हों या कृत्रिम, बडा काम करती हैं। आजकल कई स्थानों में केवल इन्हीं किरणों के द्वारा क्षय की चिकित्सा की जाती हैं। चिकित्सा-ससार में आज इस चिकित्सा के सम्बन्ध में जोर शोर से अनुभव हो रहे हैं।

कण्ठमाला या टी० बी० ग्लैण्ड्स पर भी ये किरणें आश्चर्यजनक रूप से काम करती हैं। एक अनुभवी डाक्टर ने हमसे कहा कि जो टी० बी० ग्लैण्डस दूसरी किसी भी चिकित्सा पद्धति से आराम नहीं होते हैं वे भी इस अल्ट्रा व्हायोलेट चिकित्सा से आराम हो जाते हैं।

*जीवाणु और पराकासनी किरणें*—ईसवी सन् १८७७ में डोंन्स और ब्लण्ट नामक विद्वानों ने प्रकट किया कि सूर्य किरणों में जीवाणु नाशक तत्व मौजूद रहते हैं। इसके तेरह वर्ष के पश्चात् राबर्टकोच

नामक विद्वान ने क्षय रोग के कीटाणुओं पर सूर्यप्रकाश का प्रयोग किया और यह अनुभव किया कि ये कीटाणु सूर्य्यप्रकाशमें दस मिनिट से अधिक नहीं जी सकते। तब से क्षय रोग में सूर्यप्रकाश बहुत लाभकारक माना जाता है। इसी से यह कहा जाता है कि अन्धेरे में क्षय रोग फलता फूलता है और प्रकाश में वह दुम दबा कर भागता है मतलब यह कि पराकासनी अदृश्य किरणें चाहे वे प्राकृतिक हों चाहे कृत्रिम जीवाणुनाशक शक्ति रखती हैं।

*पराकासनी किरणें और विसर्पिका* (Herpes) *रोग*—विसर्पिका रोग में पराकासनी किरणों का आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। बड़े अनुभवी डाक्टरों का कथन है कि इस रोग में जितना ये किरणें काम करती हैं उतना ससार की कोई चिकित्सा-पद्धति नहीं करती। अगर रोग के होते ही कुशल हाथों के द्वारा किरण चिकित्सा कराई जाय तो रोग के शीघ्र मिट जाने की पूरी सम्भावना है। इस रोग में खास तौर पर यही चिकित्सा करवानी चाहिए।

*पाण्डुरोग, ल्यूकोमिया और पराकासनी किरणें*—पाण्डु रोग या हरिद्र रोग में सप्ताह में दो बार इन किरणों का स्नान करा देने से रोगी को बडा लाभ होता है और रक्त-कणों की सख्या बढती है।

ल्यूकोमिया रोग में सप्ताह में दो बार लाल किरणों का ( Infra Red ) स्नान कराने से फायदा होता है।

इसी प्रकार स्नायुशूल, कटिस्नायुशूल, पाकाशय के रोग, दमा, सधिवात, सब प्रकार के चर्म रोग, दन्त रोग इत्यादि मनुष्य शरीर में होनेवाले अनेक रोगों में इस चिकित्सा से बहुत लाभ होता है।

कुछ ऐसी भी बीमारियाँ होती हैं जिनमें अल्ट्रावॉयलेट चिकित्सा लाभ के बदले हानि भी पहुँचा देती है जैसे गुर्दे की बीमारियाँ, केन्सर, निर्बल हृदय, फेफड़ों का क्षय आदि ऐसे रोगों में यह चिकित्सा नहीं देनी चाहिये।

सूर्य्य किरणों से सम्बन्धित जिस आल्ट्रावायलेट चिकित्सा का ऊपर वर्णन किया गया है उसमें बहुत से सामान की जरूरत होती है और इस चिकित्सा की व्यवस्था कुछ विशेष और बडे अस्पतालों में ही मिलती है, इसलिए सूर्य्य-किरणों की यह चिकित्सा सर्वजन सुलभ नहीं है।

लेकिन सूर्य्य-किरणों में कई विशेषताएँ ऐसी हैं जिनसे साधारण से साधारण मनुष्य भी बिना किसी विशेष सामान के पर्याप्त लाभ उठा सकता है, ऐसी ही कुछ विशेषताओं का नीचे सक्षिप्त में विवेचन किया जाता है।

*सूर्य्य किरण और विटामिन "डी"*—यह एक आश्चर्य की बात है कि जीवन तत्व विटामिन "डी" जो मनुष्य के जीवन के लिए एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है सूर्य्य किरणों के अन्दर काफी तादाद में पाया जाता है।

सूर्य्य किरणें जब शरीर की त्वचा पर पडती है तो चर्म छिद्रों के नीचे के अवयवों में मौजूद रहनेवाली चरबी और तेल में ऐसा रासायनिक परिवर्तन कर देती हैं कि वहाँ पर अपने आप विटामिन "डी"

पैदा हो जाता है। जिसका शरीर लाभ उठाता है। इसलिए विटामिन "डी" प्राप्त करने के लिए धूप का सेवन करना ही सबसे उत्तम साधन है।

इन सूर्य्य किरणों से बिना किसी खर्च के, बिना किसी मशीन की सहायता के और बिना किसी विशेष वैज्ञानिक ज्ञान के आसानी से विटामिन "डी" प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य्य को घर की स्त्रियाँ भी आसानी से कर सकतीं हैं।

जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में सूर्य्य किरणों के द्वारा विटामिन "डी" पैदा होता है उसी प्रकार चिकनाई वाले भोज्य पदार्थों को भी धूप में रख देने से सूर्य्य की किरणें उन भोज्य पदार्थों में विटामिन "डी" पैदा कर देती हैं। भोजन को सूर्य्य की किरणों अथवा कृत्रिम किरणों के प्रकाश में रखकर विटामिन "डी" प्राप्त करने की क्रिया को अंग्रेजी में इरेडिएशन (Irradiatisn) कहते हैं। इस क्रिया के द्वारा विटामिन "डी" तैय्यार करके अगर उसे कुछ समय तक सुरक्षित रखना हो तो इस कार्य्य के लिए उत्तम घी या जैतून के तेल में इसको प्राप्त करना चाहिए। नारियल का तेल या मूँगफली का तेल भी इस कार्य्य के लिए काम में लिया जा सकता है मगर यह उतना उत्तम नहीं होता जितना घी या जैतून का तेल होता है। विटामिन "डी" को प्राप्त करने की विधि इस प्रकार है:—

एक चौडी रकाबी या थाली में घी या जैतून का तेल लेकर ऐसे स्थान में रख देना चाहिए जहाँ सूर्य्य की किरणें उस पर सीधी पड सकें। यह ध्यान में रखना चाहिए कि उस थाली में घी या जैतून के तेल की तह बहुत पतली हो। मोटी तह होने पर सूर्य्य की किरणें उसके निचले हिस्से तक नहीं पहुँच सकेंगी। इस प्रकार उस थाली को दिन भर सूर्य्य की धूप में पडी रहने दें, बस उसमें विटामिन "डी" तैय्यार हो जावेगा। लेकिन यदि विटामिन "डी" की तत्काल आवश्यकता हो तो घी या जैतून के तेल को सिर्फ बीस मिनिट सूर्य्य की सीधी किरणों के नीचे रख देने से काम चल जावेगा।

इस तरह से प्राप्त किये गये विटामिन "डी" को ८ महीने तक रक्खा जा सकता है इस मियाद तक वह नष्ट नहीं होता। लेकिन इतनी मियाद तक सुरक्षित रखने के लिए कुछ विशेष सावधानी करना पडती है अर्थात् उस घी या जैतून के तेल को गहरे भूरे रंग की बोतल में भरकर मजबूत काग लगाकर किसी अन्धेरे स्थान में रख दें। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हर बार बोतल का काग खोलने पर हवा के सम्पर्क से विटामिन का कुछ न कुछ अंश गायब हो जाता है।

इस प्रकार घर पर विटामिन "डी" प्राप्त करने में कुछ और आवश्यक बातों पर ध्यान रखना चाहिए और वे इस प्रकार हैं (१) काच की बोतल में घी आदि रखकर उसमें विटामिन "डी" प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। क्योंकि सूर्य्य की किरणें साधारण शीशे को पार कर उसके अन्दर बहुत देरी में पहुँचती हैं। (२) घी या जैतून के तेल को बहुत मोटी तह में थाली में नहीं रखना चाहिए क्योंकि पतली तह होने पर ही सूर्य्य की किरणें पूरी तरह से उस पर पड सकतीं हैं मोटी तह होने पर वह अधिक मात्रा में विटामिन "डी" प्राप्त न कर सकेगा। (३) धूप या रोशनी में रखकर विटामिन "डी" प्राप्त करने की क्रिया को समाप्त हो जाने पर उस घी या जैतून के तेल को खुला न रक्खें। विटामिन "डी" बन

जाने पर उसे बोतल में भरकर बोतल को कार्क से बन्द दें (४) इसे बहुत अधिक समय तक न रक्खे रहिए। हालाकि वैज्ञानिक प्रयोगों से यह बात साबित हो चुकी है कि अगर ठीक तौर से रक्खा जाय तो इस प्रकार से तैयार किया हुआ विटामिन "डी" महीनों तक रह सकता है लेकिन अच्छा यही होता है कि इसे शीघ्र उपयोग में ले लिया जाय और समाप्त हो जाने पर और ताजा विटामिन "डी" तैय्यार करा लिया जाय।

उपरोक्त विधि से आसानी के साथ विटामिन "डी" घर के अन्दर तैय्यार किया जा सकता है और इस प्रकार तैय्यार किये हुए विटामिन "डी" को उन सब बीमारियों में जैसे शरीर की बाढ का रुकना, क्षय, मृगी, दिल की धडकन, कब्ज इत्यादि रोगों पर सफलता के साथ उपयोग किया जा सकता है और इसके लिए काम में ली जानेवाली "काडलीवर आईल" "अण्डे की जरदी" "एडोस्टलीन" इत्यादि अपवित्र, गन्दी और मूल्यवान् वस्तुओं से बचा जा सकता है।

*सूर्य्यकिरणों में रहनेवाले रंगों के द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा*—इस बात को सभी कोई जानते हैं कि सूर्य्य-किरणों में अनेक प्रकार के रङ्ग रहते हैं, जो कि हमें इन्द्र धनुष के अन्दर या बिल्लौरी काँच के अन्दर दिखलाई देते हैं। यूरोप के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने सूर्य-किरणों में रहनेवाले इन रङ्गों का मनुष्य शरीर के साथ समीकरण किया है। उक्त वैज्ञानिक का कथन है कि जो रग सूर्य-किरणों में रहते हैं वे ही मनुष्य शरीर के अन्दर भी रहते हैं और उन रगों में कुछ कमीवेशी होते ही मनुष्य शरीर अस्वस्थ और रोग-ग्रस्त हो जाता है, उस रोग को दूर करने के लिए अगर उसके शरीर में उस रङ्ग की कमी को पूरा कर दिया जाय तो वह तत्काल रोग मुक्त हो जाता है। उक्त वैज्ञानिक के द्वारा प्रचलित की हुई इस पद्धति को "क्रूमोपैथी" कहते हैं। अपनी सफलता के कारण बहुत थोड़े समय में ही यह चिकित्सापद्धति सारे ससार में लोकप्रिय हो गई है।

इस चिकित्सा पद्धति का यह अभिप्राय है कि मनुष्य शरीर में प्रायः तीन प्रकार के रग प्रधानरूप से रहते हैं। नीला, लाल और पीला। ये तीनों रंग जब एक निश्चित मात्रा में रहते है तब तक मनुष्य शरीर बिलकुल स्वस्थ रहता है। मगर इन तीनो रगों की मात्रा में कमीवेशी होते ही उसमें रोग का सूत्र-पात हो जाता है।

रोग का सूत्रपात होते ही हमें उसका निदान चार चीजों का रग देखकर करना चाहिए। आँख, नख, पेशाब और दस्त। इन्हीं चार चीजों का रग देखकर रोग का विचार करना चाहिए। जैसे यदि किसी रोगी की आँखें नीली हो गई हों, उसके हाथ के नाखून नीले या सफेद लकीरों से युक्त हो गये हों, उसका पेशाब अथवा दस्त नीला या सफेद होता हो तथा वह सुस्त, आलसी और निद्रालु हो गया हो, उसकी भूख बन्द हो गई हो तो समझना चाहिए कि उसमें लाल रग की कमी है। इसी प्रकार यदि किसी रोगी की आँखें लाल या पीली हों, उसके नाखून पीले हो गये हों, पेशाब और दस्त पीला अथवा कुछ ललाई लिये हुए पीला होता हो, उसका मिजाज गर्म रहता हो, वह चञ्चल हो, उसे ज्वर मालूम होता हो, दस्त की हाजत बनी हो मगर दस्त न होता हो तो समझना चाहिए कि उसमें नीले रग की कमी है।

यह भी एक ध्यान में रखने की बात है कि किसी २ रोगी को छोटी मात्रा में किसी रंग की आवश्यकता होती है और किसीको बड़ी मात्रा में। उग्र और आकस्मिक हमला करनेवाले रोगों में किसी भी रंग की कमी एकदम और शीघ्र हो जाती है। अतः उस कमी को पूरा करने के लिए जल्दी २ और बड़ी मात्रा में औषधि देने की आवश्यकता होती है। पुराने, धीमे और दीर्घकाल स्थायी रोगों में अधिक देरी से थोड़ी मात्रा में औषधि दी जाती है। जैसे हैजे के समान आकस्मिक रोग में शरीर का नीला रंग एकदम कम हो जाता है इसलिए उसकी पूर्ति के लिए इस रोग में नीली बोतल का पानी थोड़ी थोड़ी देर में पिलाया जाता है।

कभी २ ऐसा होता है कि आँख, नाखून, पेशाब और दस्त इन चारों का रंग एक समान नहीं होता। ऐसी स्थिति में तीन चीजों का रंग देखकर औषधि देना चाहिए। कई रोग ऐसे होते हैं जिनमें इन चारों चीजों में रंग के लक्षण पहचाने नहीं जा सकते, जैसे आँख आना, खुजली, सिरदर्द, फोड़ा, घाव आदि। ऐसे रोगों में जहाँ पर वेदना हो उसी स्थान का रंग देखकर औषधि निश्चित करना चाहिए। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि आँखों के रंग से कभी २ बड़ा धोखा हो जाया करता है। शरीर में लाल रंग का अभाव होने पर भी ये लाल सुर्ख रहती है। इनको देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि शरीर में लाल रंग अधिक हो गया है। मतलब यह कि रोग का निदान करते समय पूरी सावधानी से काम लेना चाहिए।

*औषधि तैयार करने की विधि*—इस चिकित्सा पद्धति को आरम्भ करने के पहले हल्के नीले, गहरे नीले, लाल और पीले इन चार रंगों की बोतलों और इन्हीं चार रंग के फ्रेम जड़े हुए शीशों की आवश्यकता होती है। चारों रंगों की बोतलों को खूब अच्छी तरह से धोकर, माँजकर अत्यन्त निर्मल कर लेना चाहिए। बोतलें जितनी अधिक निर्मल होंगी, औषधि उतनी ही उत्तम बनेगी। फिर इन बोतलों में कुएँ का अथवा बरसात का झेला हुआ ( Rain water ) स्वच्छ पानी भरकर उनका मुँह साफ काग से बन्द कर देना चाहिए। इसके पश्चात् इन बोतलों को सूरज की धूप में इस प्रकार रखना चाहिए जिससे सूर्य की किरणें इनपर बराबर पड़ती रहे। कम से कम दो घण्टे तक इन बोतलों को सूरज की धूप में अवश्य रखना चाहिए। कुछ अधिक समय भी रह जाय तो कोई हानि नहीं, बल्कि उस पानी की शक्ति उससे अधिक ही बढ़ेगी। पर बोतलों को धूप में इस प्रकार रखना चाहिए कि उन पर सूरज की रोशनी चारों तरफ समान रूप से पड़े।

इस विधि से नीली बोतल में तैयार हुआ पानी नीला पानी और लाल बोतल में तैयार हुआ पानी लाल पानी कहलायगा। इस पानी की शक्ति तीन दिन तक रहती है। तीसरे दिन बचे हुए सब पानी को फेंककर, बोतलों को फिर साफ कर फिर से नया पानी तैयार करना चाहिए।

सूर्य-किरणों से तैयार किये हुए ये पानी ही मनुष्य शरीर में होनेवाले भिन्न भिन्न रोगों की औषधियाँ हैं। इनकी पूरी मात्रा आधी छटाँक की होती है जो आवश्यकता पड़ने पर दिन में कई बार दी जा सकती है।

इन बोतलों में सरसों का तेल भरकर भी उसमें सूर्य-किरणों से रंग प्राप्त किया जा सकता है। मगर तेल की इस बोतल को एक महीने तक सूरज की धूप में रखना चाहिए।

नीली बोतल में तैयार किया हुआ सरसों का तेल अगर सिर के पिछले भाग में बराबर पन्द्रह दिन तक मालिश किया जाय तो धातु क्षीणता और वीर्य का पतलापन मिट कर शरीर पुष्ट होता है। सफेद बालों को भी यह काला करता है। मगर यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी या तेल सूर्य की किरणों से ही यह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। बिजली या लैम्प की रोशनी से नहीं।

रंगीन बोतलों के पानी के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग के शीशों से भी मनुष्य शरीर में होनेवाली रंग की कमी को पूरा किया जा सकता है। इन शीशों को लकडी के फ्रेम में लगाकर रखते हैं। जब शरीर के किसी अङ्ग में किसी रङ्ग की कमी मालूम हो तो उस अङ्ग को धूप में रखकर उसी रग के शीशे की छाया उस पर डालना चाहिए। यदि सारे शरीर में किसी रंग की कमी हो गई हो तो एक ऐसे कमरे में—जिसके दरवाजे और खिडकियों को बन्द कर देने पर उसमें घना अन्धकार हो जाय—रोगी को लिटा देना चाहिए और उसकी सिर्फ एक खिडकी को खोलकर उस खिडकी पर वह शीशा लगा कर, उससे आनेवाला प्रकाश रोगी के शरीर पर डालना चाहिए। अगर सूर्य प्रकाश न हो तो बिजली या लैम्प का प्रकाश भी उस शीशे के द्वारा डाला जा सकता है। इस क्रिया से भी उस रग की कमी पूरी की जा सकती है।

*भिन्न भिन्न रङ्गों के मानवीय शरीर पर प्रभाव*—हलका नीला रग—क्रूमोपैथी चिकित्सा में नीला रंग सबसे अधिक महत्त्व का माना गया है। इस चिकित्सावालों का कथन है कि, नीला रग ही जीवन है। मनुष्य शरीर में जितनी कठिन कठिन बीमारियाँ होती हैं, वे सब प्रायः सब नीले रंग के अभाव से होती हैं। इस रग का कभी कभी इतना प्रभाव होता है कि लोग देख कर चकित रह जाते हैं। एक बार एक पागल स्त्री पर नीले रग की रोशनी डालने से वह बात की बात में आराम हो गई।

पागल कुत्ते के विष पर भी नीले रंग की बोतल का पानी बहुत लाभ पहुँचाता है। इस चिकित्सा में सात आठ दिन तक नीली बोतल का पानी ढाई २ तोले की मात्रा में, तीन तीन घण्टे के अन्तर से देना चाहिए। उसके पश्चात् जब बीमारी के लक्षण कुछ कम हो जायँ तब दिन में तीन बार और उसके पश्चात् दिन में एक बार सोते समय देना चाहिए।

इसके साथ ही काटी हुई जगह पर नीले काच की रोशनी डालना चाहिए और उस घाव पर नीली बोतल के पानी में फोया तर करके रखना चाहिए।

*हैजे की बीमारी और नीली बोतल का पानी*—हैजे की बीमारी में नीली बोतल का पानी बहुत काम करता है। इसको एक औंस की मात्रा में थोड़ी थोड़ी देर में पिलाने से प्यास बन्द होती है, वमन और दस्त रुक जाते हैं, शरीर की ऐंठन और बाइंटे आना बन्द हो जाते हैं। पेशाब चालू हो जाता है। इस प्रकार हैजे के सब लक्षणों में इससे फायदा होता है। मनुष्य का जीवन प्राणवायु और अपानवायु के सम्बन्ध पर निर्भर करता है इन दोनों का सम्बन्ध विच्छेद होते ही जीवन की समाप्ति हो जाती है। हैजे

की गरमी एकाएक शरीर में बढ कर प्राणवायु और अपानवायु के सम्बन्ध को विच्छेद कर देना चाहती है प्राणवायु ऊपर जाती है। जिससे वमन होते हैं और अपानवायु नीचे जाती है जिससे दस्त होते हैं।

जब शरीर में गर्मी या लाल रङ्ग का प्रभाव बढ जाता है तभी हैजा होता है। यही कारण है कि भले, चगे और पुष्ट, तथा गरम प्रकृतिवाले युवकों पर यह बीमारी जल्दी हमला करती है। दुर्बल और कफ प्रकृतिवाले मनुष्य अक्सर इससे बच जाते हैं।

कुछ डाक्टरो का कथन है कि हैजा होते ही अगर रोगी जल के अन्दर बैठ जाय तो वह मृत्यु के मुख से बच सकता है। हैजे के दिनों में अगर स्वस्थ मनुष्य दिन में तीन चार बार स्नान कर लिया करे तो वह इस बीमारी के हमले से बच सकता है। इसी प्रकार हैजे के दिनों में स्वस्थ मनुष्य भी नीली बोतल का जल दिन में एक दो बार पी लिया करे तो वे इस बीमारी के पजे से बच सकते हैं।

मतलब यह कि नीली बोतल का जल हैजे की बीमारी में एक कीमती औषधि है। हाँ, अगर रोगी की हालत आखिरी हो गई हो और उसके हाथ पैर ठण्डे हो गए हों तो उस समय शरीर में गर्मी का सचार करने के लिए लाल बोतल का जल देना चाहिए। पर यदि गर्मी आते ही फिर रोग के लक्षण दिखलाई दे तो फिर नीले रङ्ग की बोतल का जल देना चाहिए।

पेचिश, आँव और खूनी दस्तों में नीली बोतल का जल बहुत लाभ पहुँचाता है जब शरीर मे नीले रङ्ग की कमी और लाल रग की अधिकता होती है तभी यह बीमारी होती है। इसलिए ऐसे रोगी को गर्म चीजें न खिलाना चाहिए और न लाल बोतल का पानी देना चाहिए। हल्के नीले रग की बोतल का पानी इस बीमारी को दूर कर देता है।

*प्लेग की बीमारी और नीला रंग*—प्लेग की बीमारी में भी नीली बोतल का पानी बहुत लाभ पहुँचाता है। इस बीमारी में इसको आधे आधे घण्टे के अन्तर पर देना चाहिए। अगर गठान निकल आवे तो उस पर नीले रग के शीशे की रोशनी डालना चाहिए। यदि गठान चीर दी गई हो तो उस पर नीली रोशनी के बदले हरी रोशनी डालना चाहिए। प्लेग और हैजे के दिनों में नीली बोतल का पानी सवेरे शाम एक-एक औंस की मात्रा मे लेते रहने से बीमारी होने का भय कम हो जाता है।

इसी प्रकार गर्मी की अधिकता से होनेवाला बुखार, यकृत और तिल्ली के रोग, मलेरिया इत्यादि रोगों मे भी हलके नीले रग की बोतल का पानी बहुत उपयोगी होता है।

*गहरे नीले रङ्ग का मानवीय शरीर पर प्रभाव*—गहरे नीले रग में कुछ लाल रग की झलक होती है। यह रग पके हुए बैंगन अथवा जामुन के समान होता है। इस रग की बोतल का पानी फेफड़े और कण्ठ नाली की बीमारियों में बहुत लाभदायक होता है। इसलिए निमोनिया रोग में गहरे नीले रग की बोतल का पानी एक २ औंस की मात्रा में तीन २ घण्टे के अन्तर पर देने से बहुत लाभ होता है। राजयक्ष्मा रोग की प्रथम अवस्था में भी इसको देने से बड़ा लाभ होता है।

दुर्बल और वृद्ध लोगों को हल्के नीले रग की अपेक्षा गहरे नीले रग की बोतल का पानी विशेष

लाभदायक होता है। क्योंकि वृद्ध मनुष्यों को कुछ गरमी की भी आवश्यकता रहती है, जो उन्हें इसमें रहनेवाले सूक्ष्म लाल रग से मिल जाती है।

*पीले रङ्ग का मानवीय शरीर पर प्रभाव*—पीले रग के बोतल अक्सर बहुत कम मिलते हैं। जो मिलते हैं उनमें कुछ लाली अवश्य होती है इसका नाम पीला नहीं बल्कि नारगी कहना चाहिए। इस रग की बोतल का पानी कब्जियत को दूर करता है, लेकिन इसको कुछ अधिक समय तक सेवन करना चाहिए। जिससे अँतडियाँ अपना पूरा २ काम करने लग जाँय। अधिक मात्रा में इस पानी को सेवन कर उत्तेजना बढाने से हानि होने की सम्भावना रहती है। मगर इसको थोडी २ मात्रा में धीरे २ सेवन करते रहने से पुराने से पुराना कब्ज भी मिट जाता है। एक बैठक पर अधिक समय तक बैठकर काम करनेवाले लोगों के लिए यह रंग बहुत उपयोगी है। छोटे बच्चों को भी लाल रग की जगह यही रग देना चाहिए।

*लाल रङ्ग का मानव शरीर पर प्रभाव*—लाल रङ्ग का धर्म गर्म और रेचक होता है। शरीर के भिन्न २ अग जो किसी कारण से सुस्त हो गये हों इस रग से अपनी असली अवस्था में आ जाते हैं। यह रग पक्षाघात, गठिया, लकवा इत्यादि रोगों में अच्छा लाभ पहुँचता है।

इस विषय की विशेष जानकारी सूर्य्य किरण चिकित्सा के किसी ग्रन्थ में देखना चाहिए।

---

# सर्प बूटी (मीन)

*नामः—*

हिमालय—सर्प बूटी, मीन।

वर्णन—यह वनस्पति बद्रीनाथ तथा केदारनाथ के आसपास नीचे की पहाडियों में पैदा होती है। इसको वहाँ के पहाडी लोग मीन अथवा सर्प बूटी के नाम से पहचानते हैं। इस बूटी का आकार साँप के समान होता है। इसमें अलग २ चार पत्ते निकलते हैं और फिर आठ हो जाते हैं। ये साँप के फन के समान होते हैं। भीतर की बाजू से इनका रङ्ग नाग की जीभ के समान होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह बनस्पति तीव्र विषयुक्त होती है। अशुद्ध स्थिति में ज्यों की त्यों खाने से यह तत्काल प्राणनाश करती है। मगर यदि इसको शुद्ध करके उपयोग में लिया जाय तो यह पाण्डुरोग, कामला, कृमिरोग इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचाती है और जाडे के दिनों में शरीर में गरमी पैदा करके सरदी से रक्षा करती है।

सर्प बूटी को शुद्ध करने की विधि—सर्प बूटी को पहले नमक डाले हुए पानी में डालकर औटाना

चाहिए। फिर उसे कपडे में बाँधकर नदी के बहाव में उस कपडे की पोटली को चौबीस घण्टे तक रखना चाहिए। फिर उसको घी में तलकर उपयोग में लेना चाहिए।

---

# साम्भर का सींग

*नाम*.—

संस्कृत—शाबर शृंग। हिन्दी—साम्भर का सींग।

वर्णन—साम्भर नील गाय की तरह एक जगली जानवर होता है, इसको बारहसिंगा भी कहते हैं। इसके सींग बडे सुन्दर और शाखा उपशाखावाले होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव*—

साम्भर के सींग की भस्म खाँसी, कफ, पसली का दर्द, जुकाम, श्वासकष्ट, बच्चों का डिब्बे का रोग इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है।

*साम्भर सींग को भस्म करने की विधि*—साम्भर के सींग को लाकर उसके चार इच लम्बे और अगुली के समान मोटे टुकडे करके उन टुकडों को चौबीस घण्टे तक आक के दूध में भिगोना चाहिए। फिर उनको ऊपले कण्डों से भरी हुई सिगडी में रखकर जलाना चाहिए। जलाने की यह क्रिया खुली जगह में होना चाहिए, क्योंकि जलाते समय इसमें से बहुत खराब गन्ध निकलती है। जलते २ जब वे काले कोयले की तरह होकर कुछ सफेदी पर आ जाय और धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब उनको निकाल कर पीस लेना चाहिए।

इस प्रकार तैयार की हुई राख को आक के दूध में घोटकर फिर उसकी दो दो तोले की टिकडियाँ बना लेना चाहिए। इन टिकडियों को सुखाकर एक मिट्टी की हांडी में रखकर उस हाडी पर एक ऐसा ढकना रखना चाहिए जिसमें अगुली के बराबर छिद्र हो। फिर उस हाण्डी को गजपुट में रखकर फूक देना चाहिए। स्वाग शीतल होने पर उस हाण्डी को खोलने पर उसमें सफेद रङ्ग की उत्तम भस्म मिलेगी। अगर उसका रङ्ग बराबर सफेद न हुआ हो तो उसे फिर एक बार आक के दूध में घोटकर गजपुट में फूँकना चाहिए।

यह भस्म निमोनिया रोग में बहुत लाभ पहुँचाती है। विशेष कर बच्चों के ब्रेङ्को निमोनिया में इसको एक चावल या दो चावल की मात्रा में माँ के दूध के साथ थोडी २ देर में देने से बडा लाभ होता है।

---

# सूर्य्यभिड़ा

*नामः—*

संस्कृत—सूर्य्यभिरा, कोकिलाक्ष, एक कण्टका, अद्यान्दा। तेलगू—पिन्नागोरोटा। उडिया—कोई-लेखा। लटिन—Barleria Longiflora ( बारलेरिया लांगिफ्लोरा )।

वर्णन—यह एक भूरे रंग की मखमली झाड़ी होती है। इसकी ऊँचाई २४ से लेकर ४८ इञ्च तक होती है। इसके पत्ते छोटे २ एक से लेकर दो इच तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद रग के होते हैं। यह बनस्पति दक्षिणी भारत और कर्नाटक में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी जड़ का काढा, जलोदर और पथरी रोग में दिया जाता है।

---

# सूर्य्यकान्त

*नामः—*

संस्कृत—सूर्य्यकान्त, अग्निगर्भक, दीप्तोपल। हिन्दी—सूर्य्यकान्त, आतशी शीशा। बङ्गला—आतस पाथर। मराठी—सूर्यकान्त। गुजराती—अगनचश्मानो काच। अंग्रेजी—Magnyfying Glass ( मेग्नीफाइग ग्लॅास )।

वर्णन—यह एक काँच होता है जिससें सूर्य की किरणें पडने से वे केन्द्रीभूत होकर दाहक हो जाती हैं। जो सूर्यकान्त चिकना, व्रणरहित, तुषरहित और घिसने से आकाश के समान निर्मल हो हो जाय तथा जिसको धूप में रखने से अग्नि पैदा हो जाय वह उत्तम होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सूर्यकान्त गरम, निर्मल, रसायन, वात और कफनाशक और मेधाजनक होता है। इसका पूजन करने से सूर्य सन्तुष्ट होता है।

---

# सेमर (मोचरस)

*नामः—*

संस्कृत—शाल्मलि, रक्तपुष्पा, तूलवृक्षः, मोचनी इत्यादि। हिन्दी—सेमर, मोचरस, कांटिसेमल, रक्तसेमल, पेगून। गुजराती—सेमलो, रक्तसेमलो। बगाल—शिमुल, रक्तशिमुल। मराठी—सेमर, सांवरी,

काण्टेरो सेमर। अंग्रेजी—Redsilk cotton Tree (रेड सिल्क कॉटन ट्री)। लेटिन—Bombex Malabaricum (बाम्बेक्स मलाबारिकम)।

वर्णन—सेमर का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस वृक्ष के ऊपर मोटे और तिकोने मजबूत काँटे होते हैं। इसकी डालियों के सिरे पर पत्तों के झूमके आते हैं। प्रत्येक झूमके में पाँचसे सात तक पत्ते होते हैं। हर एक पत्ता चार से लेकर बारह इञ्च तक लम्बा और एक से लेकर ४ इञ्च तक चौड़ा होता है। बसन्त ऋतु में इस वृक्ष के ऊपर लाल रंग के बड़े बड़े फूल आते हैं। इन फूलों की पखड़िया भी बड़ी होती हैं। इसके पश्चात् इस वृक्ष पर आक के फलों के समान फल आते हैं। ये फल सूखकर जब फटते हैं तब इनमें से बहुत सी मुलायम रूई निकल कर चारों तरफ उड़ जाती है। यह रूई बंगाल में गादी तकिये भरने के काम में आती है। इसके बीज काले रंग के होते हैं। इस वृक्ष के गोंद को मोचरस कहते हैं। मोचरस और सहजने का गोंद एक सरीखा होता है। इसलिए बहुत से लोग मोचरस में सहजने का गोंद मिला दिया करते हैं। इसलिए मोचरस को खरीदते समय सावधानी रखना चाहिये। सहजने का गोंद जड़ और भारी होता है। मोचरस बहुत हलका, भुरभुरा और लाल रंग का होता है यह पानी में डालने से फूल जाता है।

सेमर के नीचे की जड़ को सेमर मूसली कहते हैं। यह खयाल रखना चाहिए कि औषधि प्रयोग में एक वर्ष से डेढ़ वर्ष तक के छोटे पौधे की जड़ ही काम में लेना चाहिए। इससे बड़े पौधे की जड़ बेकार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सेमर मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, स्वादिष्ट, रसायन, कफकारक, कामोद्दीपक तथा रक्तपित्त, पित्त और रुधिर के दोषों को हरता है। इसकी जड़ अथवा सेमर मूसली मीठी, शीतल, पौष्टिक, किञ्चित मूत्रल, अन्तों का सकोचन करनेवाली, पित्तनाशक, शरीर की गरमी को शान्त करनेवाली और सूजन को हरनेवाली होती है। इसकी छाल कसैली, कफनाशक, मूत्रल, पौष्टिक और किञ्चित ग्राही होती है। इसके फूल—कड़वे, कसैले, शीतल, स्वादिष्ट, रूक्ष, मलरोधक, कफ और पित्त को दूर करनेवाले और रक्त को शुद्ध करने वाले होते हैं। ये तिल्ली की बीमारी और श्वेत प्रदर में बहुत लाभदायक होते हैं। इसके फल मीठे, शीतल, पचने में हलके, उत्तेजक, मूत्रल, पौष्टिक, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक, धातु परिवर्त्तक, रक्त को शुद्ध करनेवाले और मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मिक झिल्लियों पर बहुत लाभदायक प्रभाव डालनेवाले होते हैं।

सेमर का गोंद अर्थात् मोचरस कसैला, मलरोधक, बलवर्द्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला, बुद्धिवर्द्धक, शीतल, अवस्था स्थापक, भारी, स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक, रसायन स्निग्ध, कफकारक, गर्भस्थापक, वातनाशक, तथा अतिसार, प्रवाहिका रक्त रोग, पित्तदाह, आमातिसार और रक्तातिसार को दूर करनेवाला होता है इसको एक मास तक सेवन करने से अशुद्ध पारद के विकार दूर होते हैं।

सेमर के फूलों का, घी और सेंधा नमक से बनाया हुआ शाक असाध्य प्रदर रोग को हरता है। तथा कफ और रक्तपित्त को दूर करता है।

यूनानी मत से सेमर का गोंद अथवा मोचरस कड़वा, संकोचक, रक्तश्रावरोधक तथा कामोद्दीपक, होता है। यह पित्तदोष, रक्तविकार, दाह और मुखशोथ में उपयोगी होता है।

मोचरस जोरदार सग्राहक लेकिन स्निग्ध होता है। सेमर की मूसली सग्राहक, कामोद्दीपक, पौष्टिक और अवस्था स्थापक होती है। कामेंद्रिय के ऊपर इसकी कुछ उत्तेजक क्रिया होती है। सेमर के कोमल फल उत्तेजक, मूत्रल और खांसी को नष्ट करने वाले होते हैं। मूत्रेन्द्रिय के ऊपर इनकी कुछ शामक क्रिया होती है।

मोचरस जीर्ण अतिसार, सग्रहणी और आम के रोगों में बहुत उपयोगी होता है। अत्यार्तव में भी इसका उपयोग लाभदायक होता है। सेमर मूसली की पेज बनाकर सुजाक तथा अतिसार से उत्पन्न दुर्बलता को दूर करने के लिए दी जाती है। यह बलवर्द्धक और कामोद्दीपक होती है। इसके कोमल फल मूत्रकृच्छ्र में बहुत फायदेमन्द होते हैं।

सेमर के फूल, खसखस और शक्कर तीनों चीजों को बकरी के दूध में औटाकर दिन में तीन बार देने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। इसके पत्तों को पीस कर गठानों की सूजन पर बांधा जाता है।

इसका गोंद मोचरस एक उत्तम कामोद्दीपक वस्तु है। इसमें टैनिक और गैलिक एसिड बहुत बड़ी मात्रा में रहती है और जिन रोगों में सकोचक औषधियों की आवश्यकता होती है उनमें यह बहुत सफलतापूर्वक दिया जा सकता है। इसके गोंद में पौष्टिक और जीवन विनिमय क्रिया को शुद्ध करनेवाले तत्व भी रहते हैं। इसका उपयोग अतिसार, रक्तातिसार और अत्यधिक रजश्राव में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

इसकी जड में उत्तेजक और पौष्टिक तत्व रहते हैं। इसके नवीन पौधे की जड, छाया में सुखाकर चूर्ण करके खिलाने से उत्तम कामोद्दीपक पदार्थ का काम करती है। नामर्दी को दूर करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

इसके तीन बरस से कम उम्र वाले पौधे की जड जो कि 'सेमरकन्द' के नाम से प्रसिद्ध है मध्यप्रान्त में एक सकोचक और मज्जातंतुओं को बल देनेवाले पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

कम्बोडिया में इसकी छाल एक रक्तश्राव रोधक वस्तु की तरह गर्भाशय से होनेवाले अनियमित रक्त-श्राव को रोकने के लिए उपयोग में ली जाती है। इसकी जड मूत्रल मानी जाती है और इसका गोंद पानी में मिलाकर आवश्यकता पडने पर सुजाक में दिया जाता है।

कोमान के मतानुसार सेमर का गोंद सकोचक, शान्तिदायक और रक्तश्राव को रोकनेवाला होता है। इसको प्राचीन रक्तातिसार के दो केसों पर आजमाया गया। फुफ्फुस सम्बन्धी क्षय में कफ के साथ जानेवाले खून में, इन्फ्लुएंजा में, रक्त की वमन में, अत्यधिक रजश्राव में, तथा प्राचीन रक्तातिसार में इसका प्रयोग किया गया और उसमें सफलता हुई। इसकी ४० ग्रेन की दो या तीन मात्रा देने से दस्त और वमन के

साथ तथा कफ के साथ जानेवाला खून बन्द हो गया। लेकिन तीव्र और प्राचीन रक्तातिसार में इसका असर बहुत धीरे होता है और इसका असर तीव्र करने के लिए इसमें कूडे की छाल, अनार का छिलका इत्यादि चीजें मिलानी पडती हैं।

सुश्रुत के मतानुसार सेमर के फूल और फल दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर साप और बिच्छू के विष पर देने से लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति साप और बिच्छू के विष पर निरुपयोगी है।

उपयोग—

*रक्तपित्त*—सेमर के फूलों के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से रक्त पित्त मिटता है।

*प्लीहा*—सेमर के फूलों को रात भर पानी मे भिगोकर मल छान कर उसमे राई का चूर्ण मिलाकर पिलाने से प्लीहा की वृद्धि मिटती है।

*सुरा प्रमेह*—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से सुरा प्रमेह मिटता है।

*चेचक*—सेमर के तीन-चार बीजों को निगलने से चेचक बहुत कम निकलती है अथवा बिलकुल नहीं निकलती।

*रक्त प्रदर*—रसौत को पानी में गलाकर छानकर उसमें मोचरस मिलाकर पीने से रक्तप्रदर मिटता है।

*पेशियों की सूजन*—सेमर के पत्तों की लुगदी बाँधने से पेशियों की सूजन मिटती है।

*मूत्रकृच्छ्र*—सेमर के छोटे वृक्ष की जड की अन्त की नोकों को पीसकर दूध मिश्री के साथ पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है और इनके चूर्ण की फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

*बच्चों का अतिसार*—मोचरस को एक से दो माशे तक की मात्रा में मिश्री मिलाकर देने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

*नपुन्सकता*—इसकी छोटी जडों को छाया में सुखाकर उनका पाक बनाकर खाने से नपुन्सकता तथा लिङ्ग की शिथिलता मिटकर प्रबल कामोत्तेजना होती है।

*खूनी बवासीर*—सेमर के सूखे फूल, पोस्त के दाने और शक्कर इन तीनों चीजों को बकरी के दूध में औटाकर गाढा करके आठ २ माशे की मात्रा में दिन में तीन बार लेने से खूनी बवासीर और रक्तपित्त मिटता है।

बनावटें—

*प्रदरनाशक घृत*—हरे आवले का रस, विदारीकन्द का रस, सेमर के फूलों का रस, शतावरी का रस, गाय का दूध और गाय का घी ये सब चीजें अस्सी अस्सी तोला लें तथा डामर की जड़ें, गन्ने की जड़ें, डाभ की जड़ें, कास की जड़ें और मूंज की जड़ें—ये पाँचों चीजें सोलह २ तोला लेकर ४ सेर

पानी में औटावें। जब एक सेर ( अस्सी तोला ) पानी बाकी रह जाय तब उसे छानकर उपरोक्त आवले के रस इत्यादि में मिला दें और सबको इकट्ठे करके हलकी आँच पर पकावें, जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें और उसमें मुलहटी, निसोत, यवक्षार और विधायरे का चूर्ण चार चार तोला और शक्कर बत्तीस तोला मिलाकर बोतलों में भर लें। विधायरा अगर न मिले तो उसकी जगह समुद्रशोष की लकड़ी का चूर्ण डाल दें।

इस घी में से प्रतिदिन सबेरे शाम एक से दो तोला तक घी गरम दूध में डालकर पीना चाहिए और खट्टे, खारे, चरपरे, तीक्ष्ण तथा गरम पदार्थों से परहेज करना चाहिए। इस घी के कुछ दिनों तक सेवन करने से स्त्रियों के प्रदर में रामबाण फायदा होता है अगर और भी जल्दी लाभ लेना हो तो नीचे लिखे बाह्य उपचार को भी साथ में चालू रखना चाहिए।

*प्रदरनाशक सोगठी*—माजूफल, फुलाई हुई फिटकरी, लोध, धाय के फूल, बबूल के कोमल पत्ते, आंवला, कमल गट्टा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, हीरा कसी, गूलर के कच्चे सूखे फल, वड की कोंपलें, अडूसे के पत्ते, अशोक की छाल, अनार के फल का छिलका, वायविडंग, इन्द्र जौ, पलास का गोंद, चमेली के पत्ते, कत्था, काला सुरमा तथा कपूर इन सब चीजों को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके अरणी के रस में खरल करके छोटे बेर के समान गोलियाँ बना लेना चाहिए। इन गोलियों के सूखने पर एक गोली लेकर उसको पीसकर थोडा गुड मिलाकर उसे पुरानी रुई में रखकर उस रुई की बत्ती या गोली बनाकर योनि मार्ग में धारण करना चाहिए। ( जङ्गलनी जड़ी बूटी )

उपरोक्त दोनों प्रयोगों को कुछ दिनों तक साथ करने से प्रदररोग में आशातीत लाभ होता है।

---

# सेव

*नामः*—

संस्कृत—सेव, सिञ्चीतिका फल, मुष्टि प्रमाण, बदर। हिन्दी—सेव। बङ्गला—सेव। मराठी—सेवफल। गुजराती—सेव। शिमला—पालो। पंजाब—पालु, सेनु, शेर, सुत, चुग इत्यादि। सिंध—सुफ। अरबी—तुफ्फाह। फारसी—सेव। इंग्लिश—Apple Tree ( अपील ट्री )। लेटिन—Pyrus Malus ( पायरस मेलस )।

वर्णन—सेव का वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों की तरह मगर कुछ चौड़े होते हैं। इसके फूलों का रंग सफेद होता है और उनमें लाल छींटे होते हैं। इसके फल का रंग कच्ची हालत में हरा, अर्द्धपक्व अवस्था में पीला और पकने पर लाल होता है। सेव का फल सारे भारतवर्ष में बड़े चाव से खाया जाता है और इसे सब जानते हैं। इसके वृक्ष काश्मीर में बहुत होते हैं और काश्मीर का सेव अपनी उत्तमता और सरसता के कारण सारी दुनिया मे मशहूर है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सेब, वात पित्त नाशक, पौष्टिक, कफकारक, भारी, रस और पाक में मधुर, शीतल, रुचिकारक और वीर्य्यवर्द्धक होता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता, सिर्फ भाव प्रकाश में इसका उल्लेख मिलता है इससे अनुमान होता है कि मुसलमानी युग में इसका वृक्ष भारत-वर्ष में लाया गया हो।

सेब ठण्डा, सुपथ्य, रुचिवर्द्धक, स्वास्थ्यकर और पौष्टिक होता है। यकृत और गुर्दे के रोगों में यह बहुत लाभदायक है। इसमें विटामीन 'बी' काफी तादाद में रहता है। पौने दो छटांक सेब में ४० यूनिट विटामीन 'बी' पाया जाता है।

अमेरिका में सेब के वृक्ष की छाल का शीत निर्यास पित्त ज्वर, पार्यायिक ज्वर और मलेरिया ज्वर में बहुत सफलता के साथ दिया जाता है।

सड़े हुए सेब का पुल्टिस बनाकर कमजोर और वातग्रस्त आँखों ( Rheumatie Eyes ) पर बाँधा जाता है।

फ्रांस में सेब का पुलटिस बनाकर सूजी हुई आँखों पर बाँधते हैं। सेब को कुचलकर और उसकी लुगदी आँखों के ऊपर बाँधते हैं।

कब्जियत को दूर करने के लिए सेब रात को सोते समय खाया जाता है चाहे वह पका हो चाहे कच्चा किसी भी स्थिति में प्रशंसनीय फ़ायदा करता है।

खट्टे सेब का रस मसों के ऊपर रगड़ने से वे धीरे २ नष्ट हो जाते हैं।

उपयोग—

*बिच्छू का विष*—सेब के पत्तों को औटाकर पिलाने से बिच्छू का विष उतरता है।

*अतिसार*—कच्चे सेब में ग्राहीधर्म होने से वे अतिसार में लाभदायक होते हैं।

*आँख की पीड़ा*—सेब को पीसकर लेप करने से पित्त से होनेवाली आँख की पीड़ा मिटती है।

*वमन*—कच्चे सेब के रस में सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से वमन बन्द होती है।

*खाँसी*—पके हुए सेब के रस में मिश्री मिलाकर पिलाने से सूखी खाँसी और मूर्छा मिटती है।

*पित्तोन्माद*—सेब के शरबत में ब्राह्मी का चूर्ण मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

*मस्तिष्क की कमजोरी*—सेब का मुरब्बा खिलाने से मस्तिष्क को तथा हृदय को शक्ति मिलती है।

*बिच्छू का विष*—सेब के रस में ४ रत्ती कपूर मिला कर पिलाने से बिच्छू का विष उतरता है अगर न उतरे तो आधे आधे घन्टे से दो तीन बार पिलाना चाहिए।

*रक्तातिसार*—पोस्त के दानों के क्वाथ में सेब का शरबत मिला कर पिलाने से रक्तातिसार मिटता है।

*गुर्दे की पीड़ा*—गुर्दे की पीड़ा में सेव का खिलाना लाभदायक होता है।

*निद्रा नाश*—अनिद्रा के रोगी को सेव का फल खिलाने से नींद आने लगती है।

*अफ़ीम का व्यसन*—अफीम या मदिरा के व्यसन वाले को सेव का फल खिलाने से धीरे धीरे व्यसन छूट जाता है।

---

# सेमनी

*नामः—*

पंजाब–सेमनी, फिरच। शिमला–चौना। लेटिन—Dicliptera Roxburghiana ( डिक्लिप्टेरा राक्सबर्घिना )।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है जो कि पंजाब, बंगाल, आसाम और भूटान में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

पंजाब में यह वनस्पति एक पौष्टिक वस्तु की तरह उपयोग में ली जाती है।

---

# सोना

*नामः—*

संस्कृत–सुवर्ण, स्वर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, इत्यादि। हिन्दी–सोना, स्वर्ण। गुजराती–सोनु। मराठी–सोनें। बङ्गला–सोना। तैलगू–मङ्गारम्। फारसी—तिला, जर। अरबी–जहब। इग्लिश–Gold ( गोल्ड ) लेटिन—Aurum ( एरम )।

वर्णन—सोना एक खनिज द्रव्य है, जो सारी दुनिया में जेवर बनाने तथा सिक्के ढालने के काम में आता है। इसका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

*सोने की परीक्षा*—जो सोना तपाने पर लाल सुर्ख हो, कसौटी के ऊपर कसने से केशरी रंग का हो जाय, चांदी और ताम्बे के अंश से रहित हो और स्निग्ध, नरम और भारी हो, ऐसा सोना उत्तम और औषधि के काम में लेने योग्य होता है। सफेदी लिए हुए मैले रंग का, कठोर, रूखा, तपाने पर काला पड़ जानेवाला, ताम्बे और चाँदी की मिलावटवाला, हलका और चोट मारने से टूट जानेवाला सोना त्याज्य होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सोना शीतल, वीर्यवर्द्धक, भारी, कामोद्दीपक, रसायन, स्वादिष्ट, कडवा, कसैला,

पचने में स्वादिष्ट, पवित्र, पौष्टिक, नेत्रों को हितकारी, तथा बुद्धि, स्मरण शक्ति और मस्तिष्क की शक्ति को बढाने वाला होता है। यह हृदय को बल देता है, कान्ति और आयु को बढाता है, वाणी को शुद्ध करता है, क्षय रोग में बहुत लाभदायक है, जङ्गम और स्थावर विषों को नष्ट करता है तथा उन्माद, त्रिदोष, ज्वर और शोष को दूर करता है।

जिस प्रकार शुद्ध किया हुआ और विधिपूर्वक भस्म किया हुआ स्वर्ण अनेक दिव्य गुणों से युक्त होता है। उसी प्रकार अशुद्ध या बिना विधि से मरा हुआ स्वर्ण बल और वीर्य को नष्ट करनेवाला, रोगजनक और मृत्यु कारक होता है।

*सोने में से वट्टा निकालने की विधि*—जो सोना आग में तपाने पर काला पड जाय उसमें ताम्रादि धातुओं की मिलावट समझना चाहिये। इस वट्टे को निकालने के लिए निम्नविधि का प्रयोग करना चाहिए—

साम्भर नमक और लाल ईंट का चूर्ण इन दोनों को समान भाग लेकर पीस कर कपड छान कर ले। फिर एक बडा ऊपला ( गोंयठा ) लेकर उस पर उस चूर्ण को बिछा कर उस पर सुवर्ण पत्रों को जमा दे। फिर उन स्वर्ण पत्रों पर उस चूर्ण की तह लगा कर उस पर स्वर्णपत्रों की दूसरी तह लगा दें। इसी क्रम से सब सुवर्णपत्रों को जमा दें और ऊपर से एक ऊपला और रख दें। दोनों बगल में उपरोक्त चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लगा दें, जिससे स्वर्णपत्र कहीं से भी दिखलाई न पडे। इस सम्पुट को ऐसे घर में जहाँ हवा न लगती हो ले जाकर दो सेर ऊपलों के अन्दर रख कर आग लगा दें। शीतल होने पर देखें, यदि सम्पुट में किसी जगह कुछ लाली दीख पडे तो समझना चाहिए कि अभी वट्टा नहीं निकला है। इसलिए फिर अग्नि दें, स्वाग शीतल होने पर सम्पुट को खोल कर देखें यदि स्वर्णपत्र काले निकलें तो फिर उसी प्रकार सम्पुट बनाकर अग्नि दें, इस प्रकार पाच छः बार अग्नि देने से सब वट्टा जल जावेगा।

*सोने को शुद्ध करने की विधि*—दूसरी सब धातुओं की तरह सोने के पत्रों की भी तिल के तेल, मट्ठा, गौमूत्र, काजी, कुलथी के बीजों का काढा, इन पाच चीजों में सात सात बार गरम करके बुझा लेने से सामान्य शुद्धि हो जाती है। विशेष शुद्धि करने के लिए काजी, नीम्बू का रस, मठा और गाय का दुध इन चार चीजों में उनको सात सात बार बुझा लेना चाहिए। स्वर्ण में ताम्बे के समान अधिक दोष नहीं होते हैं। इसलिए इसकी केवल सामान्य अथवा केवल विशेष शुद्धि से भी काम चल सकता है।

*सोने की भस्म की विधि*—शुद्ध सोना ४ तोला, हिंगुलोत्थ पारद १२ तोला, इन दोनों को खूब घोटकर पिट्ठी बना लें, पिट्ठी होने पर घीगुवार का रस, नीम्बू का रस, और सेंधा नमक इन तीनों चीजों के साथ उस पिट्ठी को खूब घोटें, दो दिन घोटने के पश्चात् पानी में उस पिट्ठी को धो डालें, जब पिट्ठी खूब कोमल हो जाय तब केवल घीगुवार के रस में उसे दो दिन तक घोटें फिर उस पिट्ठी में १६ तोले शुद्ध गंधक मिलाकर सब की कजली कर लें, फिर उस कजली को तीन भावना नीम्बू के रस की देकर कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी में कजली को भरकर सिन्दूर रस की तरह बालुका यन्त्र में दो दिन तक पकावे, स्वाग

शीतल होने के पश्चात शीशी के गले पर लगे हुए स्वर्णसिन्दुर को निकाल कर रख ले और शीशी के तल भाग में स्थित स्वर्ण भस्म को निकाल कर घीगुवार के रस में घोट कर टिकिया बना ले। उसके पश्चात टिकिया सूख जाने पर सराव सम्पुट में रखकर कुक्कुट पुट में फूँक दे। इतने प्रयोग के पश्चात् स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है और वह काम में लेने लायक हो जाती है। मगर यदि उसमें फिर भी चमक मालूम हो और उस चमक को दूर करना हो तो उपरोक्त सभी विधि को एक बार और कर लेने से वह निश्चन्द्र हो जायगी। मगर चमकवाली स्वर्ण भस्म भी हानिकारक नहीं होती, यह बात ध्यान में रखने की है। हाँ, निश्चन्द्र होने से उसके गुण जरूर बढ जाते हैं।

*स्वर्णभस्म की दूसरी विधि*—चार तोले शुद्ध पारा और दो तोले शुद्ध सोने के पत्र दोनों को दो दिन तक घोटकर पिट्ठी बना लें, फिर चार तोले शुद्ध गन्धक और चार तोले शुद्ध सखिया इन दोनों को डालकर दो पहर तक मर्दन करके कजली कर लें, इस प्रकार कुल चौदह तोले कजली को कपडमिट्टी की हुई शीशी में रखकर बालुका यन्त्र में पकाना चाहिए। पर यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इसमें से निकलनेवाले धुएँ से शरीर को बचाया जाय, क्योकि सखिया का धुआँ शरीर के लिए हानिकारक होता है। स्वाग शीतल होने पर गले में लगे हुए मल्लसिन्दूर को निकाल लें और शीशी के तलभाग में लगी हुई सुवर्ण भस्म को भी निकाल लें।

इस विधि से तैयार की हुई स्वर्णभस्म सखिया के योग से बहुत गरम होती है। इसलिए शीत ज्वर, *कफजन्य रोग तथा वात व्याधियों में तो यह बहुत गुणकारी होती है, मगर पित्तजन्य व्याधियों में तथा* कामोद्दीपन के लिए इसका प्रयोग करने के पूर्व अगर इसको शीशी में भरकर केले की जड में एक महीने तक गाड दिया जाय तो इसकी गरमी शान्त हो जाती है।

*सुवर्ण और क्षयरोग*—क्षयरोग के समान भयकर और दुर्जय रोग में स्वर्ण का उपयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। जिस प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों ने क्षयरोग में सुवर्ण के उपयोग की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है उसी प्रकार आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रियों ने भी इस भयकर व्याधि में सुवर्ण की उपयोगिता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। जिस प्रकार देशी चिकित्सक सुवर्णभस्म अथवा उसके योग से बनी हुई औषधियाँ क्षय के रोगियों को देते हैं, उसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सकों ने सुवर्ण के इंजेक्शन तथा दूसरी बनावटें क्षय रोगियों के लिए तैयार की हैं और उनका प्रचुर मात्रा में उपयोग भी होता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि स्वर्ण ने क्षयरोग के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है मगर इतना जरूर कहा जा सकता है कि क्षयरोग की चिकित्सा में यह मनुष्य के लिए मददगार अवश्य हुआ है।

इसका कारण यह है कि स्वर्ण तेजस्वी होते हुए भी एक सौम्य पदार्थ है। यह हृदय, मस्तिष्क, स्नायुजाल, मूत्रपिण्ड और शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर एक प्रकार का अनुकूल और स्फूर्तिदायक प्रभाव डालता है। जिससे शरीर का ओज और कान्ति बढ़ती है, शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है और मन में उमग पैदा होती है, रक्त-सचालन की क्रिया में रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity power) बढती है जिससे रोग के कीटाणु उस रक्त में पनप नहीं सकते। मतलब यह कि आर्थिक जगत्

की तरह ही चिकित्सा क्षेत्र में भी सोना एक दिव्य वस्तु है। दूसरी एक बात और महत्व की है। भारतीय चिकित्साशास्त्र में सुवर्ण की और पारद की बडी दोस्ती है। एक के मेल से दूसरी वस्तु की शक्तियाँ अनेकों गुना बढ जाती है फिर भी ये दोनों वस्तुएँ आपस में मिलने नहीं पातीं। आधुनिक रसायन विज्ञान उनका मिलना सम्भव नहीं मानता मगर हमारे प्राचीन चिकित्सा-ग्रन्थों में ऐसी बातों पर भी विश्वास किया गया है कि सोना और पारद मिल जाते हैं आर ऐसे मिल जाते हैं कि पारद का वजन तक नहीं बढता। तभी जाकर पारद की वास्तविक सिद्धि होती है और वह रोग नामक शक्ति पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है। यह एक मोटी सी बात है कि जिन वस्तुओं का केवल रासायनिक क्रियापूरता मिलन ही जब उनकी शक्तियों को इतनी बढा देता है तब उनका हमेशा का मिश्रण कितना शक्तिशाली होता होगा मगर अभी तो यह पद्धति अन्धकार में है।

उपयोग—

*राजयक्ष्मा*—अडूसे के पत्तों के रस और शहद के साथ स्वर्ण भस्म को चटाने से राजयक्ष्मा रोग में लाभ होता है।

(२) शीतोपलादि चूर्ण में मोती की पिष्टी गिलोयसत्व और स्वर्णभस्म मिलाकर चटाने से फेफड़ों के क्षय में लाभ होता है।

*स्मरणशक्ति की कमजोरी*—सोने के वर्कों को वच और शहद के साथ चटाने से स्मरणशक्ति बढती है।

*उन्माद*—ब्राह्मी, शङ्खाहुली और शहद के साथ स्वर्णभस्म को देने से उन्माद रोग में बहुत लाभ होता है।

*खाँसी*—दूध के साथ स्वर्णभस्म को लेने से राजयक्ष्मा की सूखी खाँसी मिटती है।

*नपुन्सकता*—सोने के वर्कों से यूनानी के प्रसिद्ध योग 'माजून तिला' को बनाकर सेवन करने से नपुन्सकता मिटती है तथा शरीर का तेज और मस्तिष्क का बल बढता है।

*विष विकार*—सोने के वर्कों को शहद के साथ चाटने से सब प्रकार के विषविकार में लाभ होता है। मगर जबतक विष न उतरे थोडी २ देर में बार २ चाटना चाहिए।

*कान्ति*—सोने की भस्म को केशर के साथ लेने से चेहरे की कान्ति बढती है।

*बल*—इसको दूध के साथ लेने से शरीर का बल बढ़ता है।

*पुरुषार्थ*—जलभांगरे के रस के साथ सुवर्णभस्म को लेने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

*त्रिदोष*—सोने की भस्म को सोंठ, लौंग और मिरच के साथ देने से त्रिदोष या सन्निपात में पैदा हुआ उन्माद मिटता है।

*सर्वरोग*—भिन्न २ प्रकार के उचित अनुपानों के साथ इसका सेवन करने से सभी प्रकार के रोगो में लाभ पहुँचाता है। प्रत्येक औषधि इसके मेल से प्रभावशाली हो जाती है।

मात्रा—सोनेकी भस्म की मात्रा बडे आदमी के लिए आधी रत्ती से दो रत्ती तक और बच्चों के लिए दो चावल की है।

*अशुद्ध स्वर्ण की शान्ति*—अशुद्ध स्वर्ण को खाने से पैदा हुए विकारों को नष्ट करने के लिए आँवले के चूर्ण को शहद के साथ तीन दिन तक दो दो तोले की मात्रा में चाटना चाहिए।

*बनावटें*—

*स्वर्ण रसायन*—सुवर्ण भस्म १ तोला, चन्द्रोदय ( षड्गुण गन्धक जारित ) छः माशे, सुवर्ण बरा दो तोला, मोती पिष्टी १ तोला, अभ्रक भस्म एक तोला, गिलोयसत्व दो तोला, तथा छोटी इलायची, बंशलोचन, पीपर, मुलहटी और बायविडंग इन सब चीजों को चार २ तोला और छिलका निकाली हुई बादाम की गिरि साढ़े सत्ताइस तोला लेकर सबको अच्छी तरह पीसकर एक सौ दस तोला उत्तम शहद में मिलाकर काँच की बरणी में रख लेना चाहिए।

इस सुवर्ण रसायन को दो माशे से छः माशे तक की मात्रा में लेने से मनुष्य की जीवनीशक्ति ( Vitality ) तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति ( Immunity ) बढ़ती है, उसके मस्तिष्क हृदय, ज्ञानतंतु, आमाशय और फेफड़ों को बल मिलता है। उसकी स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति बढ़ती है तथा उसकी बल, कान्ति, ओज और प्रतिभा का विकास होता है। यह एक दिव्य रसायन है।

---

# सोनामक्खी

*नाम:*

संस्कृत—स्वर्णमाक्षिक, पीतमाक्षिक, मधुधातु, स्वर्णवर्ण इत्यादि। हिन्दी—सोनामक्खी। बङ्गला—स्वर्णमाक्षिक। गुजराती—सोनामखो। मराठी—सोनामुखी। अरबी—मुर्कशीशाजहबी। इग्लिश—Iron Sulphide ( आयर्न सल्फाइड )। लेटिन—Ferri Salphuretum ( फेरी सल्फ्यूरेटम )।

वर्णन—सोनामक्खी एक उपधातु होती है। यह भारतवर्ष में कई स्थानों पर खदानों से निकलती है, एक प्रकार के काले रंग के पत्थर के अन्दर पीले रंग की धातु होती है जिसमें पत्थर का अंश कम और धातु का अंश अधिक होता है वह सोनामक्खी उत्तम होती है। जिस सोनामक्खी में सोने के समान झलक हो और जो वजन में भारी हो वह सोनामक्खी उत्तम होती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

आयुर्वेदिक मत से सोनामक्खी स्वादिष्ट, कड़वी, कामोद्दीपक, रसायन, नेत्रों को हितकारी, वस्तिरोग

नाशक तथा कण्ठरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, विष, कण्डू और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली होती है।

सोना मक्खी, कसैली, वीर्य्यवर्द्धक, स्वर शोधक, हलकी, रसायन, नेत्रों को हितकारी तथा कुष्ठ, सूजन बवासीर प्रमेह वस्ति की पीडा, पाण्डुरोग, कुष्ठ, उदर रोग, विष और क्षय रोग का नाश करती है।

किंचित सुवर्ण मिश्रित होने से यह स्वर्ण माक्षिक कही जाती है। यह सोने की उपधातु होती है और स्वर्ण भस्म के अभाव में कभी-कभी वैद्य लोग इसका प्रयोग करते हैं।

अशुद्ध सोना मक्खी मन्दाग्नि, बलनाश, नेत्ररोग, कुष्ठ, गण्डमाला, व्रण इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव करती है। इसलिए इसको हमेशा शुद्ध करके तथा भस्म करके उपयोग में लेना चाहिए।

*सोना मक्खी को शुद्ध करने की विधि*—एक सेर सोनामक्खी, आधा सेर सेंधा नमक और डेढ सेर अरण्डी का तेल तीनों को कड़ाही में डालकर उस कड़ाही को चूल्हे पर चढा कर तीव्र अग्नि देना चाहिए और लोहे की कलछी से चलाते रहना चाहिए। जब अरण्डी का तेल बिलकुल जल जाय तब उसमें डेढ सेर त्रिफले का काढा डालकर फिर तेज आँच दें और लोहे की कलछी से हिलाते जायँ। त्रिफले का काढा जलने पर डेढ़ सेर केले की जड का रस और उसके जलने पर डेढ सेर नीम्बू का रस भी उसमें जला डालें, नीम्बू का रस जल जाने पर एक पहर की तीव्र आँच और देना चाहिए।

स्वाग शीतल होने पर शुद्ध स्वर्ण माक्षिक को कढाही से निकाल कर पानी के कुण्डे में डालकर दोनों हाथों से मल डालें जिससे सब नमक पानी में घुल जाय, जब पानी नितर जाय और स्वर्ण माक्षिक पेंदे में बैठ जाय तब धीरे धीरे उस खारे पानी को नीचे गिरा दें और दूसरा पानी भर दें। इस प्रकार तीन चार बार उसे पानी से धो डालें जिससे नमक का सब अंश निकल जाय। फिर सोना मक्खी को लोहे की खरल में कूटकर कपडछान कर लें। इस क्रिया से सोना मक्खी शुद्ध हो जाती है।

*सोना मक्खी को भस्म करने की विधि*—स्वर्ण माक्षिक पाव भर, शुद्ध गंधक पाव भर और पाव भर हिंगुलोत्थ पारद, तीनों की कजली करके नीम्बू के रस की एक दो भावना देकर नलिका डमरू यन्त्र में पकाने से तल भाग में सोना मक्खी की भस्म और ऊपर के भाग में रस सिन्दूर मिलेगा। स्वाङ्ग शीतल होने पर उस भस्म को नीम्बू के रस में घोट घोटकर तीन बार सुखा लें फिर उसकी टिकिया बनाकर तीन बार गजपुट में फूँक देने से सोना मक्खी की उत्तम लाल रङ्ग की भस्म तैय्यार हो जाती है।

( रसायनसार )

स्वर्ण माक्षिक की इस भस्म को धूप में ले जाकर देखे अगर उसमें चमक बिलकुल न रही हो तो उसे शुद्ध भस्म समझें। चमक रह गई हो तो और गजपुट में फूँकना चाहिए।

*अशुद्ध सोना मक्खी के विकारों की शान्ति*—अशुद्ध सोना मक्खी के विकारों को शान्त करने के लिए कुलथी का काढ़ा, अनार के छिलकों का काढा तथा रोगन बादाम का उपयोग करना चाहिए।

*उपयोगः—*

*पित्त प्रमेह*—सोना मक्खी की भस्म को गिलोयसत अथवा शहद के साथ लेने से पित्त प्रमेह मिटता है।

*ज्वर*—अतीस के चूर्ण के साथ सोना मक्खी की भस्म को लेने से ज्वर छूटता है।

*मन्दाग्नि*—पीपल और शहद के साथ सोना मक्खी की भस्म को लेने से मन्दाग्नि मिटती है।

*अतिसार*—सोंठ के साथ सोना मक्खी की भस्म को लेने से अतिसार मिटती है।

---

# सोनापाती

*नामः—*

तामील—सोनापाती, नागसम बागम। तेलगू—पोचा गोटला। सतारा—पुत्तेना। लेटिन—Tecom astans (टेकोमा स्टेन्स)।

वर्णन—इस वनस्पति की खेती दक्षिणी भारत के कुछ भागों में की जाती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

सतारा जिले में इस वनस्पति की जड साँप के विष, बिच्छू के विष तथा जहरीले चूहे के विष की एक उत्तम औषधि मानी जाती है। इसकी जड को नीम्बू के रस के साथ अथवा नीम्बू का रस न मिलने पर पानी के साथ पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाते हैं और उसको एक टेबल स्फुन या बडे चम्मच की मात्रा में थोडी थोडी देर में पिलाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार साँप और बिच्छू के विष पर यह वनस्पति निरुपयोगी होती है।

---

# सोनवल्ली

*नामः—*

संस्कृत—सूर्य्यावर्त्त। हिन्दी—सोनवल्ली, सुवाली। मराठी—सुरावर्त्त। पजाब—निलन, टप्पलबूंटी। सिंध—सोनवल्ली। गुजराती—कालो ओखराड़। इग्लिश—Turnsole ( टर्नसोल ) लेटिन—Chrozophore Rottleri ( क्रोझोफोरा रोटलेरी )।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है, इसके पत्ते मासल और मुलायम होते हैं ये ३-२ से

लेकर ६-३ सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं इसके बीज ४ मिलीमीटर लम्बे, चमकदार और रूपहले होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी पश्चिमी भारत, उत्तरी भारत और मध्य भारत में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह वनस्पति वामक, तीव्र विरेचक और क्षत पैदा करनेवाली होती है। यूरोप में इसके बीज एक विरेचक वस्तु की तरह उपयोग में लिए जाते हैं। इस पौधे में लिटमस (Litmus) नामक एक प्रकार का रङ्गदार द्रव्य पाया जाता है।

---

# सोयाबीन

*नामः—*

हिन्दी-सोयाबीन। लेटिन—Soja Hispida (सोजा हिस्पिडा)।

वर्णन—आधुनिक संसार में जिन कुछ वनस्पतियों ने सारे मानव समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है तथा जो वस्तुएँ मानवीय शरीर की जीवन रक्षा के लिए बहुमूल्य साबित हुई हैं उनमें सोयाबीन भी एक है। यह एक प्रकार का दालदार अन्न होता है। इसका पौधा मटर के पौधे की तरह होता है तथा इसकी फली और इसके बीज भी मटर से ही मिलते जुलते होते हैं। अन्तर इतना ही होता है कि सोयाबीन के बीजों में तेल काफ़ी मात्रा में पाया जाता है मगर मटर के बीजों में तेल नहीं रहता।

*इतिहास*—सोयाबीन का मूल उत्पत्ति स्थान चीन है। चीन की पुरानी किताबों में इसका नाम सोया या सोजा लिखा है और इसी नाम के अपभ्रंश से संसार की सब भाषाओं में इसका नामकरण हुआ है। आज से करीब ६००० छः हजार वर्ष पूर्व चीन में 'शेननग' नामक राजा राज्य करता था। यह राजा हर साल भारी गाजे बाजे और उत्सव के साथ सोयाबीन को बोता था और उस दिन सारे चीन में त्योहार मनाया जाता था। इससे पता चलता है कि करीब सात हजार वर्षों से सोयाबीन चीन निवासियों का प्रधान भोजन रहा है।

सोयाबीन करीब १२०० प्रकार का होता है और चीन में इसके सैकड़ों नाम हैं। रंग भेद से यह काला, हरा और पीला तीन प्रकार का होता है। इसका बीज देखने में मटर की तरह गोल, चपटा अण्डाकृति मगर दबा हुआ होता है। पीले रंग का सोयाबीन देखने में खाने में, और गुणों में सर्वोत्कृष्ट होता है।

पूर्वी एशिया में सोयाबीन हमेशा से पैदा होता रहा है। चीन, कोरिया, मंगोलिया, मन्चूरिया और जापान में यह बहुत प्राचीन काल से पैदा होता है। मगर चीन और जापान के लोगों के सिवा आज से चालीस वर्ष पहले तक बाहरी दुनिया को इसका पता न था। उन्हीं दिनों जापान से कुछ लोगों ने नमूने

के तौर पर इसको इग्लैण्ड भेजा, जब इग्लैण्ड में इसकी रासायनिक परीक्षा की गई तो इसमें मनुष्य शरीर के लिए उपयोगी अनेक पदार्थों का पता लगा। तब से यूरोपीय देशों में इसकी मांग बढ़ने लगी और माग बढने के साथ ही इसकी खेती को भी प्रोत्साहन मिला और अब तो यह अमेरिका, अफ्रिका, रूस, जर्मनी, इग्लैण्ड, भारत इत्यादि ससार के सब देशों में पैदा होने लगा है। फिर भी आज सारा ससार जितना सोयाबीन पैदा करता है उस सबसे अधिक अकेले मचूरिया में पैदा होता है। सन् १९२७ में अकेले मचूरिया में १४८५ लाख मन सोयाबीन पैदा हुआ था।

*गुण दोष और प्रभाव—*

चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से सोयाबीन का जितना महत्व है उससे बहुत अधिक महत्व आहार शास्त्र या भोजन विज्ञान की दृष्टि से है। मनुष्य शरीर का पोषण करने के लिए, उसको नीरोग रखने के लिए, उसको पुष्ट और कान्तिवान बनाने के लिए तथा उसमें जीवनी शक्ति ( Vitality ) और रोग प्रतिरोधक शक्ति को कायम रखने के लिए जिन जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे सब सोयाबीन में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

सोयाबीन में प्रोटीन ४० प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेड्स २४'६ प्रतिशत, नमक ४'८ प्रतिशत, विटामिन ए० बी० और डी०, केलसियम, सोडियम, मैनगेनीज, फासफोरस और इनके क्षार, लवण, तथा यौगिक काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अन्दर धातुजलवण ( Salts of metal ) चार पांच प्रतिशत पाये जाते हैं।

सोयाबीन में फासफेट्स काफी मात्रा में रहते हैं इस कारण यह मस्तिष्क तथा ज्ञानतंतुओं की बीमारियों में जैसे मृगी, हिस्टीरिया, स्मरण शक्ति की कमजोरी, सूखा रोग और फुफ्फुस सम्बन्धी बीमारियों में उत्तम पथ्य का काम करता है। सोयाबीन के आटे में लेसिथिन (Lecithin) नामक एक पदार्थ रहता है यह पदार्थ तपेदिक और ज्ञानतंतुओं की बीमारियों में बहुत लाभ पहुँचाता है।

सोयाबीन के अन्दर पाई जानेवाली प्रोटीन दूसरी सब तरकारियों और अनाजों की प्रोटीन से बढिया होती है। इसकी प्रोटीन गाय के दूध की प्रोटीन से मिलती जुलती होती है। माँस, मछली इत्यादि अपवित्र वस्तुओं में जितनी प्रोटीन होती है उतनी प्रोटीन सोयाबीन के द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती है। जितने अन्न और शाक होते हैं उनमें सोयाबीन की प्रोटीन शरीर के पोषण और हजम होने की दृष्टि से सबसे उत्तम होती है। इसमें करीब करीब सब खास खास एमीनोएसिड्स ( Amino Acids ) खास करके ग्लाईसीन ट्रिप्टो फेट ( Glycini Trypto Phate ) और लाईसीन ( Lycine ) काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

जाँच के पश्चात् यह भी मालूम हुआ है कि सोयाबीन की प्रोटीन में न्युक्लियो प्रोटीन नहीं होती, न्यूक्लियो प्रोटीन से यूरिक एसिड बनता है जो शरीर के सब जोडों में जमा होकर गठिया की बीमारी पैदा करता है। माँस की प्रोटीन में न्युक्लियो प्रोटीन होती है जिससे यूरिक एसिड बनता है और जो गठिया

का मूल कारण होता है। माँस की जगह सोयाबीन खाने से प्रोटीन तो मिलती है मगर यूरिक एसिड पैदा नहीं होता और मनुष्य गठिया तथा गुर्दे की बीमारियों से सुरक्षित रहता है।

सोयाबीन की एक विशेषता यह है कि यह शरीर की अम्लता ( Acidity ) को कम करती है और क्षार की मात्रा को बढाती है। इसलिए शरीर में अम्लता बढने से जिन जिन रोगों की उत्पत्ति होती है उनसे यह शरीर की रक्षा करती है।

कामशक्ति के ऊपर भी सोयाबीन अनुकूल प्रभाव डालती है। भारतवासियों के दैनिक भोजन में उडद ऐसी वस्तु है जो बहुत कामशक्तिवर्द्धक है, पंजाब में सुबह शाम दोनों टाइम उडद की दाल खाते हैं इसी से वहाँ के लोग इतने पुष्ट और तगडे होते हैं। लेकिन सोयाबीन उडद से डेवढी कामशक्ति-वर्द्धक है। शाकाहारियों के लिए तो बल बढाने के लिए यह नियामत है।

नाइट्रोजन और तेल भी सोयाबीन में काफी तादाद में रहता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात यह है कि इसमें स्टार्च ( मैदा ) का अंश बहुत कम रहता है जो कि शरीर के लिए हानिकर होता है। इसमें नाइट्रोजन, तेल, विटामिन, और प्रोटीन सब आवश्यक चीजें काफी तादाद में रहती हैं और स्टार्च के समान हानिकारक चीज का इसमें अभाव रहता है। यही कारण है कि आहार विज्ञान की दृष्टि से इस वस्तु ने सारे जगत् का ध्यान अपनी ओर खींच रक्खा है।

*मधुमेह रोग और सोयाबीन*—मधुमेह रोग में सोयाबीन एक उत्तम पथ्य है। डाक्टर जोजेफजेप्टो-जो कि एक सेनेटोरियम के प्रधान थे—का कथन है कि सोयाबीन में स्टार्च और कार्बोहाइड्रेड्स इतने कम रहते हैं कि यह मधुमेह के रोगियों को पथ्य के रूप में निःशङ्क होकर दी जा सकती हैं, यही दो चीजें ( स्टार्च और कार्बोहाइड्रेड्स ) मधुमेह के रोगियों को हानि पहुँचाती हैं। हमारे सैनेटोरियम के कई मरीजों को सोयाबीन का आटा कई प्रकार से दिया और उन्हें हमेशा लाभ हुआ। कई मरीजों का तो यहाँ तक कहना है कि वे इसी की वजह से जिन्दा हैं नहीं तो अब तक कभी के खतम हो गये होते।

माँस, मुर्गी, मछली, अण्डा तथा दूसरी दालदार चीजें शरीर में अम्लता पैदा करती हैं लेकिन सोया-बीन शरीर में क्षार (Alkalinity ) पैदा करके उस अम्लता को नष्ट कर देती है। यह रक्त में क्षार तत्व को पैदा करती है, जिससे रक्त की रोग प्रतिहारक शक्ति बढती है। मांस में रहने वाली प्रोटीन शरीर में यूरिक एसिड पैदा करके गठिया की बीमारी का मार्ग खोल देती है। यही कारण है कि मांस खानेवालों को गठिया और गुर्दे की बीमारियाँ अधिक होती हैं। मगर यह एक आश्चर्य की बात है कि सोयाबीन का प्रोटीन यूरिक एसिड को नष्ट करके इन रोगों से मनुष्य की रक्षा करता है।

सोयाबीन से दूध, दही इत्यादि चीजों के सिवा अन्य अनेक प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ बनती हैं। रूस में एक बार सोयाबीन की प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें सोयाबीन से बनाई हुई ३०० प्रकार की चीजें जैसे सोयाबीन का दूध, सोयाबीन का दही, चाय, काफी, रोटी, बिस्कुट, चाकलेट, पूरी, कचौडी, समोसा इत्यादि अनेक चीजें दिखलाई गई थीं जिनको लोगों ने बहुत पसन्द किया था।

*सोयाबीन का दूध*—यह एक बडे आश्चर्य की और मनोरञ्जक बात है कि जिस प्रकार हमारे यहाँ गाय, भैंस इत्यादि पशुओं से दूध प्राप्त करके बाजार में बेचा जाता है उसी प्रकार चीन में घर में तथा बडी २ फैक्टरियों में सोयाबीन का दूध तैयार किया जाता है। जैसे यहाँ बडी बडी डेरी फर्मों से दूध बोतलों में भरकर शहरों में बिकने के लिए आता है वैसे ही वहाँ सोयाबीन का दूध बोतलों में भरकर या खुला ही बिकने के लिए आता है। प्रातःकाल अन्धेरा रहते ही हजारों लोग इस दूध को लेकर बेचने को निकल जाते हैं। जायके के लिए जैसे यहाँ के दूध में शक्कर मिलाते हैं वैसे ही वहाँ इसके दूध में शक्कर मिलाई जाती है।

चीन, जापान, मचूरिया, कोरिया इत्यादि में सोयाबीन के दूध का लोग बहुत उपयोग करते हैं। इस दूध में भी गाय, भैंस इत्यादि के दूध में पाये जानेवाले प्रोटीन, चर्बी, शक्कर, साइट्रिकएसिड, एल्ब्यूमिन, गधक, फासफोरस, केलसियम, लोहा और विटामीन इत्यादि तत्व पाये जाते हैं।

सोयाबीन का दूध बनाने का तरीका इस प्रकार है—१४ छटाँक पानी को आग पर उबलने के लिए रख दिया जाता है फिर उसमें चम्मच से थोडा २ सोयाबीन का आटा डालते जाते हैं और उसे खूब हिलाते जाते हैं, जब दो छटाँक आटा उसमें मिल जाता है तब आटा डालना बन्द कर देते हैं और १० मिनिट तक उसे और उबालते हैं और फिर नीचे उतारकर छान लेते हैं। बस यही सोयाबीन का दूध है।

सोयाबीन के इस दूध का दही भी जमाया जाता है। एक रत्ती मैगनेशियम क्लोराइड को दो तोला खूब गरम पानी में घोलकर रख लेते हैं। इसमें से थोडा सा मिक्श्चर सोयाबीन के दूध में डाल देने से वह जम जाता है। दही जम जाने पर जो पानी ऊपर आ जाता है उसे नितार कर निकाल देते हैं। फिर लकडी के चौकोर ट्रे जो करीब तीन इञ्च गहरे होते हैं उनमें कपडा बिछाकर इस दही को उलट देते हैं और कपडे के किनारों को उलट कर दही के ऊपर डाल देते हैं। ऊपर से लकड़ी का तख्ता रख देते हैं इस प्रकार एक ट्रे के ऊपर दूसरी ट्रे, दूसरी पर तीसरी इस प्रकार कई ट्रे को एक के ऊपर एक जमाकर उन सबके ऊपर एक भारी पत्थर रख देते हैं और दबाकर दही का सब पानी निकाल देते हैं। फिर सब ट्रे को अलग २ करके दही की चौकोर चकलियाँ काट लेते हैं। ये चकलियाँ इतनी सख्त हो जाती हैं कि हाथ से पकडने पर भी नहीं टूटती।

इस दही को जापान और चीन में टोफू कहते हैं। इस टोफू में प्रोटीन, चर्बी और लवण बहुत होता है।

*सोयाबीन का तेल*—सोयाबीन के बीजों का तेल भी निकाला जाता है इस तेल में भी विटामिन 'ए' तथा दूसरे शक्तिवर्द्धक पदार्थ पाये जाते हैं। इस तेल से लार्ड, मारगैरीन बनस्पति घी बनता है जिसे विलायत में गरीब लोग घी की जगह खाते हैं।

मतलब यह कि सोयाबीन एक पौष्टिक अन्न है। इसमें शरीर रक्षा में उपयोगी सभी तत्व पाये जाते हैं।

---

# सोमवल्लभ

*नामः—*

दक्षिण—सोमवल्लम । तामील—कल्लाल । लेटिन—Ficas Dalhousiae (फिकस डेलहोसिया)।

वर्णन—यह पीपल या अञ्जीर के वर्ग का एक वृक्ष होता है। जो नीलगिरि पहाड़पर पैदा होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसके पत्ते यकृत की शिकायतों और चर्मरोगों के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फल हृदय रोगों के अन्दर उपयोगी होते हैं।

---

# सोमवल्ली

*नामः—*

संस्कृत—सोमवल्ली, सोमलता, द्विजप्रिया, यज्ञश्रेष्ठा, सोमा इत्यादि।

वर्णन—सोमवल्ली आयुर्वेद विज्ञान के मत से एक दिव्य वनस्पति होती है मगर यह सोमवल्ली वास्तव में क्या वस्तु है इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। कई लोगों के मतानुसार अमसानिया (एर्पाड्रा वल्गेरिस-जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में दिया जा चुका है) ही सोमवल्ली होती हैं तथा कुछ लोग पोरबन्दर की तरफ होनेवाली थोरवेल (Sarcosteiuma Bravistigma) (जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के चौथे भाग में जीवन्ती के नाम से दिया जा चुका है) को सोमलता कहते हैं। मगर प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस वनस्पति की जो पहचान और चिह्न वतलाये गये हैं वे इनमें से किसीके अन्दर भी नहीं पाये जाते।

सोमवल्ली का वर्णन करते हुए महर्षिचरक लिखते हैं कि 'सब औषधियों में राजास्वरूप सोम नामक वनस्पति के पन्द्रह पत्ते होते हैं। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की बढती कला के अनुसार एक २ रोज पत्ते बढता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की उतरती कला के अनुसार एक एक रोज गिरता है।

महर्षि सुश्रुत लिखते हैं:—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपंचच।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायते निपततिच॥
एकैक जायते पत्र सोमस्या हरदस्तदा।
शुक्लस्य पौर्णिमास्यान्तु भवेत् पंचदशच्छद.॥

क्षीयंते पत्रमेकेक दिवसे दिवसे पुनः ।
कृष्णपक्षे क्षये चापिवल्ली भवति केवलाः ॥

अर्थात्——सब प्रकार की सोमवल्लियों पर पन्द्रह पन्द्रह पत्ते होते हैं जो कृष्णपक्ष में गिरते हैं और शुक्लपक्ष में प्रतिदिन नये फूटते हैं अर्थात् शुक्लपक्ष में इस लता के प्रतिदिन एक पत्ता नया फूटता है और पूर्णिमा के दिन इसके पूरे पन्द्रह पत्ते हो जाते हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक पत्ता गिरता है और अमावस्या के दिन खाली लता बिना पत्तों की हो जाती है।

सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय २९ में सोम रसायन का विधान, उसकी फलश्रुति, उसके २४ भेद उसकी सेवन विधि, उसकी जातियों की पहचान इत्यादि अनेक बातों का विस्तृत विवेचन है।

महर्षि सुश्रुत लिखते हैं कि सोमवल्ली २४ प्रकार की होती है १ अशुमान, १ मुजवान, ३ चन्द्रमा, ४ रजत प्रभ, ५ दूर्वासोम ६ कनीयान्, ७ श्वेताक्ष, ८ कनक प्रभ, ९ प्रतानवान, १० तालवृन्त, ११ करवीर, १२ अशवान्, १३ स्वयप्रम, १४ महासोम, १५ गरुडाह्त, १६ गायत्र, १७ त्रैष्टुभ, १८ पाक्त १९ जागत, २० शाकर, २१ अग्नि सोम, २२ रैवत, २३ यथोक्त और २४ उड्डुपति ये चौबीस भेद होते हैं। ये ही २४ भेद वेदों में भी बतलाये गये हैं। त्रिपदा गायत्री में भी सोम का प्रतिपादन किया है। इन चौबीस जातियों में अशुमान नामक सोम घी के समान गधवाला, कन्द युक्त और चादी के समान प्रभावशाली होती है। मुजवान नामक सोमकेल के समान कन्द वाला और लहसन के समान पत्तों वाला होता है। चन्द्रमा नामक सोम सुवर्ण के समान प्रभावाला होता है। और हमेशा जल में रहता है, गरुडाह्त और श्वेताक्ष नामक दो जाति के सोम सफेद प्रभावाले होते हैं इनका स्वरूप साप की केंचुली के समान होती है और वृक्षों के अग्र भाग पर लटकती है। ये पन्द्रह ही प्रकार के सोम चन्द्रमा की कला के हिसाब से पूर्णिमा के दिन पन्द्रह पत्तों से युक्त हो जाते हैं।

सोमवल्ली आबू, सैहाद्रि, महेन्द्राचल, मलयाचल, पारियात्र, विन्ध्याचल, श्री शैल, देवगिरि और देवसह नामक पर्वतों में और देवसुद नामक सरोवर में यह वनस्पति मिलती है। वितस्ता नदी के उत्तर में पाँच बड़े पर्वत हैं उन पर्वतों के नीचे के मध्य भाग में सिन्धु नामक बडा नद है, उसमें चन्द्रमा नामक उत्तम सोम शैवाल की तरह तिरता रहता है। मुजवान् और अन्शुमान नामक दो जाति के सोम भी सिन्धु नद के प्रदेशों में मिलते हैं। काश्मीर देश में क्षुद्रक मानस नामक एक दिव्य सरोवर है उस सरोवर में गायत्र, त्रैष्टुभ, पाक्त्य, जगत् और शाक्कर नामक सोम मिलते हैं। चन्द्र के समान प्रभावाले दूसरे सोम भी इस प्रदेश में मिलते हैं। अधर्मी, कृतघ्न, द्वेषी इत्यादि मनुष्यों को सोम प्राप्त नहीं होते।

( सुश्रुत सहिता )

सुश्रुत के उपरोक्त सारे कथन पर अन्दाज लगाकर, पोरबन्दर के सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी लिखते हैं कि महर्षि सुश्रुत का सोमवल्ली का प्राप्ति स्थान "सिन्धु नदी का प्रदेश" पजाब, सिंध और कच्छ ही माना जा सकता है। कच्छ में आक या मदार के वर्ग की दो वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। इन वनस्पतियों के रासायनिक गुण दोषों की बराबर जाँच होकर अगर उन पर प्रयोग किये जावें तो वे ऊपर

कहे हुए २४ जाति के सोमों में एक दो जाति की सोम मानने में आ सकती है। इन दो वनस्पतियों में एक वनस्पति सोमवेल (Sarcostemma Bravistigma) है। इसकी लताएँ खुरासानी थूहर के समान होती है, इसमें जगह-जगह जोड़ या सधिया होती हैं। इसके अन्दर दूधिया रस भरा हुआ रहता है इसके ऊपर सफेद रंग के सुगन्धित छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी और पतली लगती हैं।

यह सोमवेल मादक, रसायन और शोथ, दाह, ज्वर तथा कफ को नष्ट करनेवाली होती है।

दूसरी वनस्पति दुधाली खीप ( Periploca Aphylla) भी सोमवल्ली से मिलती जुलती होती है। इसके पौधे तीन से पाँच फीट तक ऊँचे और बहुशाखी होते हैं। इसकी डालियों में दूध भरा हुआ होता है। इसमें कभी कभी पत्ते होते हैं और कभी बिलकुल नहीं होते। जो पत्ते होते हैं वे मोटे, ढोकले के आकार के नोकदार और बिना नसों के होते हैं। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि इस झाड़ के पत्ते दो चार दिन में एक साथ पीले पड़कर गिर जाते हैं। इस वनस्पति के विषय में भी सोम होने का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित सोमवल्ली के सम्बन्ध में अब तक जितने अनुमान लगाये गये हैं उनमें असमानिया (Ephedra Vulgaris) सोमवेल (Sarcostemma Bravistigma) और दुधालीखीप (Periploca Aphylla) नामक वनस्पतियाँ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त "बाबची" "ब्राह्मी" और "सुदर्शन" नाम की वनस्पतियों के लिए भी सोमवल्ली शब्द का प्रयोग किया गया है।

फिर भी सोमवल्ली का जो प्रधान लक्षण एक-एक पत्ता रोज पैदा होना और एक एक पत्ता रोज गिरना यह उपरोक्त वनस्पतियों में से किसी में भी नहीं पाया जाता। सोमवल्ली का दूसरा प्रधान लक्षण मादकता है। उपरोक्त वनस्पतियों में भी एक दो वनस्पतियों में मादक धर्म पाया जाता है, मगर वह मादकता सोमवल्ली की मादकता के समान ही विशिष्ट गुण सम्पन्न है यह कहना बहुत कठिन है, क्योंकि सोमवल्ली से प्राप्त होनेवाली मादकता मनुष्य के ज्ञान को बढ़ानेवाली, दीर्घायु को देनेवाली, बुढापे को जीतनेवाली और परम रसायन होती है। ऐसी मादकता उक्त वनस्पतियों में कहाँ से प्राप्त हो सकती है। अतः इस दूसरे लक्षण में भी ये वनस्पतियाँ सोमवल्ली हो सकती हैं यह समझना भ्रमपूर्ण है। सोमवल्ली का तीसरा लक्षण उसकी दिव्यता और प्रभावशालिता है। यह दिव्यता और प्रभाव शालिता भी उपरोक्त वनस्पतियों में कहाँ है! जिस दिव्यता के लिए महर्षि सुश्रुत लिखते हैं कि "विलक्षण पुरुष अगर इस औषधि राज सोम का सेवन करे तो उसकी दश हजार वर्ष की आयु होती है और उस आयु को अग्नि, जल, विष, शस्त्र कोई भी तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। ऐसी सामर्थ्य आधुनिक मनुष्य की खोजी हुई उपरोक्त वनस्पतियों में कहाँ है!

मतलब यह कि जिस सोमवल्ली का विवेचन प्राचीन ग्रंथों में किया गया है वह भी उन अनेक दिव्य औषधियों की तरह आज मनुष्य समाज को दुर्लभ है जो धर्मयुक्त समय और धर्मयुक्त समाज में मनुष्य को प्राप्त होती थीं।

फिर भी इसके सम्बन्ध में जो साहित्य प्राप्त है उससे इतना तो कहा जा सकता है कि यह एक प्रकार की लता होती है जो जल और थल दोनों स्थानों पर पैदा होती है। इसके पत्ते शुक्लपक्ष की परम्परा से घटते बढ़ते हैं। इसमें एक उत्तम जाति की मादकता रहती है। पूर्वकाल में इससे 'सोमरस' नामक सुप्रसिद्ध पेय तैयार किया जाता था जो बड़े २ उत्सवों, जल्सों और धार्मिक पर्वों में सामूहिक रूप से पान किया जाता था जिस प्रकार कि आज कल कुछ स्थानों पर भाग का और कुछ स्थानों पर शराब का प्रयोग किया जाता है। इसका नशा सात्विक, दैवी गुणों से युक्त और मनुष्य को ऊँचा उठाने वाला होता था।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत—महर्षि सुश्रुत के मतानुसार इसके रस का पान करने से शारीरिक स्वास्थ्य, मन की स्फूर्ति, बुद्धि, बल, वाणी और आनन्द में सैकड़ों गुना वृद्धि होती है।

ऋग्वेद में लिखा है कि इसके सेवन से पाण्डित्यशक्ति प्राप्त होती है, चित्त स्थिर होता है, लोक और परलोक सम्बन्धी समस्त ज्ञान को प्राप्त करने की सामर्थ्य पैदा होती है। इसके सेवन से सब प्रकार की व्याधियों पर विजय प्राप्त होती है। मृत्यु के मुँह में पहुँचते हुए मनुष्य के लिए भी यह उत्तम औषधि है क्योंकि यह सब प्रकार के असाध्य और कठिन रोगों को दूर करती है। इतना ही नहीं बल्कि विधिपूर्वक सेवन करने से यह अमरत्व भी प्रदान करती है।

सोम की स्तुति करते हुए ऋग्वेद में लिखा है 'हे अमृत सोम हम तेरे को पान करके अमर हुए। अगम्य विषयों को जानने के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। अब मृत्यु के समान प्रबल शत्रु भी हमारा क्या बिगाड़ सकता है।

यजुर्वेद में इसकी प्रार्थना करते हुए लिखा है कि 'तुझे गन्धर्वों ने खो दी, तुझे इन्द्र ने खो दी, और चन्द्रमा भी तेरा सेवन करके क्षय रोग से मुक्त हुआ।'

रससार नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'एक ऐसी लता होती है कि कृष्णपक्ष में उसका एक एक पत्ता प्रतिदिन खिरता है और शुक्लपक्ष में एक एक पत्ता प्रतिदिन फूटता है। इस लता का कन्द पूर्णिमा के प्रभात में लाकर उसके रस से सोने के साथ पारे की गोली बांधकर उस गोली का उपयोग करने से शरीर अजर और अमर होता है तथा लोहे पर उसका प्रयोग करने से वह सोना हो जाता है।'

इस प्रकार इस वनस्पति की प्रशंसा प्राचीन ग्रन्थों में गाई गई है मगर वास्तव में यह वनस्पति क्या है यह बात आज तो अन्धकार में है।

---

# सिंगड़ियो

नाम.—

कच्छी—सिंगड़ियो, थोरियो, छिरियारखीप, रतीखीप। गुजराती—दुधालीखीप, थोरियु, होम। लेटिन—Periploca Aphylla (पेरीप्लोका अफेला)।

वर्णन—सिंगड़िया या दुधाली खीप के वृक्ष ३ से लेकर पांच फीट तक ऊँचे होते हैं, इनमें बहुत सी शाखाएँ निकली हुई होती हैं। ये शाखाएँ हरे रंग की चमकदार और दूध से भरी हुई होती हैं। इसके पत्ते मोटे, दलदार, ढोकले के समान और बिना नसों के होते हैं। इसके फूल अत्यन्त सुंदर, सुगन्धित, आधे इंच व्यास के और बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी फलियें आमने सामने लगती हैं, ये पतली और तीखी नोकवाली होती है। इसके बीजों पर मुलायम बालों की पींछी होती है। ऊपर सोमवल्ली का विवेचन करते हुए हम लिख आये हैं कि कई लोग इसी वनस्पति को सोमवल्ली मानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

हुकर साहब का कथन है कि इस वनस्पति के रेशों से रस्सियाँ बनायी जाती हैं। इसके सुगन्धित फूलों का स्वाद द्राक्ष के समान होता है। कच्छ भुज में इसका दूध दाद और वायु के रोगों पर मसलते हैं।

*पागले कुत्ते का विष और सिंगड़िया*—पागल कुत्ते के विष पर यह वनस्पति उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका यह उपयोग कच्छ के किसी मुसल्मान को एक फकीर ने बतलाया था और जिसका उल्लेख सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने अपनी 'कच्छ की वनस्पतियों' नामक ग्रन्थ में किया है, इसके उपयोग की विधि इस प्रकार बतलाई गई है—

(१) जिसको पागल कुत्ते ने काटा हो मगर उसके विष के लक्षण (हड़काव) पैदा न हुए हों उसको इस झाड़ के पत्ते और डखल पानी के साथ खूब महीन पीस कर उनको थोड़े पानी में छान कर हर तीसरे दिन एक वाइन ग्लॉस (करीब ५ तोले) पिलाना चाहिये।

(२) अगर उसको विष के लक्षण या हड़काव पैदा हो गया हो तो उसको ऊपर लिखी हुई दवा का एक वाइन ग्लॉस भर कर तुरन्त पिलाना चाहिए और यदि चार घण्टे में कुछ लाभ दृष्टिगोचर हो तो उसके अनुसार कुछ कम मात्रा करके फिर पिलाना चाहिए। अगर कुछ लाभ दिखलाई न दे तो एक २ घण्टे में एक-एक वाईन ग्लास भरकर तब तक पिलाना चाहिए जब तक कि फायदा न हो। फायदा शुरू होने पर दवा की मात्रा क्रमशः कम करते जाना चाहिए।

इस औषधि को उपरोक्त मुसल्मान ने पागल कुत्ते के कुछ रोगियों पर वि० संवत् १९४१ में उपयोग में लिया और प्रायः सब रोगियों को इससे लाभ हुआ।

---

२४११

# सोडा

*नामः—*

हिन्दी—सोडा । अङ्गरेजी—Sodii Bi Carbonas ( सोडि बाई कार्बोनास )

वर्णन—सोडा एक क्षार होता है, यह सफेद रंग का होता है । खाने के काम का तथा कपड़ा धोने के काम का इस तरह यह दो प्रकार का होता है । यह एक मशहूर वस्तु है जिसे सब कोई जानते हैं ।

*गुण दोष और प्रभाव—*

सोडा पाचक, उदरशूल को दूर करनेवाला तथा क़ब्जियत, अग्निमांद्य, हिचकी, अरुचि इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचानेवाला होता है ।

इसकी क्रिया पेट के अन्दर पोटेसियम साल्ट की तरह होती है मगर यह पेट में बहुत धीरे धीरे घुलता है । यह पेट की जलन को कम करता है । इसका पानी के साथ लेप बनाकर अग्नि से जले हुए स्थान पर लेप करने से तुरन्त शान्ति होती है । इसके पानी से कुल्ले करने से दाँत का दर्द कम होता है और किसी भी एसिड युक्त दवा को पीने से दाँतों में जो खराबी पैदा हो जाती है वह दूर हो जाती है । दन्तशूल की वजह से होनेवाला मस्तकशूल भी इसके कुल्ले करने से मिट जाता है ।

बिना कब्जियत के होनेवाला सिर दर्द सोडा बाईकार्ब को भोजन के पहले लेने से मिट जाता है । पेट की खराबी से होनेवाली खाँसी में सोडा बहुत उपयोगी होता है । इसके लिए एक ड्राम सोडा एक बड़े ग्लॉस पानी में डालकर धीरे धीरे पीना चाहिए । जलनयुक्त अग्निमांद्य में—जिसमें पेट में कलेजे के यहाँ पर जलन रहती है, खट्टी डकारें आती हैं, पेट फूला हुआ रहता है और कब्जियत रहती है, सोडा एक बहुमूल्य औषधि है । इस कार्य के लिए भोजन के तीन घण्टे के बाद इसको देना चाहिए । अगर इसको भोजन के पहले कुचला और स्प्रिट एमोनिया के साथ दिया जाय तो यह भूख को बढाता है, कमजोरी से होनेवाले अग्निमांद्य में इसको बीस ग्रेन की मात्रा में एक औंस पानी के साथ मिलाकर पीने से लाभ होता है । पेट के अन्दर होनेवाले छालों में जिसमें पेट में बहुत दर्द रहता है एक चाय का चम्मच भर सोडा चूने के नितरे हुए पानी के एक बड़े ग्लॉस के साथ देने से बहुत लाभ होता है ।

मधुमेह के अन्दर भी यह एक मूल्यवान् औषधि है । मधुमेह जनित बेहोशी में ३ प्रतिशत सोडे से तैय्यार किया हुआ निर्यास पिलाने से बेहोशी दूर होती है । इसके साथ ही पाँच औंस पानी में एक ड्राम सोडा मिला कर एक-एक घण्टे में तब तक पिलाना चाहिए जब तक पेशाब में अल्के लाइन रिएक्शन पैदा न हो जाय । बहुत साघातिक केसो में इसका तीन पिण्ट पानी इण्ट्राबीनस इञ्जेक्शन के द्वारा दिया जाता है ।

सूक्ष्म वायु नलियों में जमे हुए कफ को यह ढीला करता है । हिचकी के अन्दर भी यह एक बहुमूल्य दवा है । एक बार गुजरात के डाक्टर नानावटी को हिचकी चलना शुरू हुई । जो कई महीनों तक चलती

रही। अनेकों प्रकार की औषधियों और इञ्जेक्शनों का प्रयोग किया गया, मगर वह किसी से बन्द न हुई। यहाँ तक कि सोडा भी छोटी छोटी मात्रा में कई बार दिया गया मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में सुप्रसिद्ध डाक्टर जीवराज मेहता ने उनको एक ड्राम की मात्रा में सोडा एक साथ दिया जिससे उसमें बहुत लाभ हुआ और चार पाँच खुराक देने पर तो वह एकदम बन्द हो गई।

मतलब यह कि सोडा उदर रोगों के लिए एक बहुमूल्य वस्तु है।

---

# सोरा

*नाम:—*

संस्कृत—सूर्य्यक्षार, अर्कक्षार, तीक्ष्णरस, सुवर्चिका इत्यादि। हिन्दी—सोरा, कलमी शोरा। मराठी—*सोरा। गुजराती—सुरोखार। फारसी—शोरा। अरबी—अबकर। लेटिन*—Potassium Nitras (पोटेसियम नाइट्रास)।

वर्णन—सोरा एक प्रकार का क्षार होता है जो सफेद रंग का रवेदार होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सूर्य्यक्षार, तीक्ष्ण, अत्यन्तउष्ण, रेचक, कटु, अग्निदीपक, सूक्ष्म, क्षार, लघु, दाहजनक, शोषक, वातनाशक, पित्तकारक तथा प्लीहा, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, वातरक्त, कुम्भ कामला, खांसी, नाक का पकना, पीठिका, शिरः पाक, शूल और आध्मान को दूर करता है।

सोरे की प्रधान क्रिया मूत्र पिण्ड पर होती है। यह गुरदे के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है, इसलिए यह गुरदे की विनिमय क्रिया को सुधारता है और रुके हुए पेशाब को जारी करता है तथा पेशाब की तादाद को बढाता है। इसके अन्दर पसीना लाने का गुण भी है अतः इसे ज्वर में देने से यह पसीना लाकर ज्वर के तापमान को कम कर देता है। मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग में शोरे का प्रयोग लाभदायक होता है। इसको दूध के साथ पिलाने से और पानी के साथ मिलाकर पेड़ू पर लेप करने से रुका हुआ पेशाब खुलकर साफ हो जाता है। एक माशा शोरा, एक माशा राई और दो मासे मिश्री को पीसकर, दो मात्रा करके, दो दिन तक प्रातःकाल लेने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है।

सोरे को सरसों के तेल में मिलाकर लेप करने से खुजली मिटती है। सोरा और सफेद कत्थे को मिला कर भुरभुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

शुद्ध कलमी शोरे में हल्दी मिलाकर आँखों में आँजने से जाला, नाखूना आदि नेत्र रोग मिटते हैं और नेत्रों की ज्योति बढती है। इसको सिरके में पीसकर कनपटी पर लेप करने से नकसीर बन्द हो जाता है। दो से दस माशे तक शोरा भोजन के पहले खिलाने से मरा हुआ बालक गर्भाशय से निकल जाता है।

---

# सोंठ

*नामः—*

संस्कृत—शुंठि, महौषधि, विश्वा, विश्वभैषज, शृंगवेर, इन्द्रभैषज इत्यादि। हिन्दी—सोंठ, सूंठ। बङ्गला—शुठ। मराठी—सोंठ। गुजराती—सोंठ, सुठ। फारसी—जजबील खुश्क। इंग्लिश—Dry Ginger (ड्राय जिंजर)।

वर्णन—सोंठ अदरक की सुखाई हुई गठानों को कहते हैं। ये गठानें सफेद रंग की होती है। सोंठ दो प्रकार की होती है (१) सटवा सोंठ और (२) पेटी की सोंठ। इनमें सटवा सोंठ उत्तम होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सोंठ रुचिकारक, आमवात नाशक, पाचक, चरपरी, हलकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाक में मधुर तथा कफ, वात और कब्जियत को दूर करनेवाली होती है। यह वीर्यवर्द्धक, सारक तथा वमन, श्वास, शूल, खाँसी, हृदय रोग, श्लीपद, बवासीर, आफरा, उदर रोग और वात रोगों को नाश करती है। यह अग्नितत्व प्रधान होने से जलांश का शोषण करती है। इसमें ग्राही धर्म भी है और कब्जियत को भेदन करने का धर्म भी रहता है।

सोंठ कफवात नाशक, पचने में मधुर, चरपरी, वीर्यवर्धक, गरम, रोचक, हृदय को हितकारी, स्निग्ध, हलकी और दीपन होती हैं। यह पाण्डुरोग, संग्रहणी और पित्त का नाश करती है।

सोंठ आयुर्वेद की एक सुप्रसिद्ध और घरेलू औषधि है। आयुर्वेद के मत से इसमें हजारों गुण हैं। यह सारे शरीर के संगठन को सुधारती है। मनुष्य की जीवनीशक्ति और उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाती है। हृदय, मस्तिष्क, रक्त, उदर, वातसंस्थान, मूत्रपिण्ड इत्यादि शरीर के सब अवयवों पर अनुकूल प्रभाव डालती है और उनमें पैदा हुई विकृति और अव्यवस्था को दूर करती है। आयुर्वेद में बननेवाले हजारों योगों में इसका सम्मेलन होता है। यह आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग 'त्रिकुटा' (सोंठ, मिर्च और पीपर) का एक प्रधान अङ्ग है।

कोमान के मतानुसार सोंठ देशी चिकित्साशास्त्र के अनेक नुसखों में सम्मिलित की जाती है। वैद्य लोग इस औषधि को उत्तेजक, पाचक और शान्तिदायक मानते हैं। मलाबार के पयानूर नामक स्थान में अदरक का ताजा रस जलोदर में लाभ पहुँचानेवाला और मूत्र निस्सारक माना जाता है। जलोदर के ऐसे करीब तीन केस देखे गये है जिनमें कि इसको औषधि के रूप में देने से फायदा हुआ है। इसके देने से पेट की सूजन में भी लाभ हुआ है। इस वनस्पति का ताजा रस तेज मूत्रनिस्सारक औषधि मानी गई है। इसके देने से बीमार लोगों के मूत्र की मात्रा दिन पर दिन बढती गई है। लेकिन यह औषधि पुराने हृदय रोग और ब्राइट्स डिसीज में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। बल्कि इसके उपयोग से रोगी की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती गई।*

---

* अदरक का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखें।

डा० देसाई के मत से सोंठ सुगन्धित, उत्तेजक और उत्तम दीपन होती है। इसके सेवन से पाचन क्रिया शुद्ध हो जाती है और पेट में वायु का सचय नहीं होने पाता। इस गुण की वजह से सोंठ आँतों के रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है।

सोंठ के उष्ण और वातनाशक धर्म की वजह से सब प्रकार की वातजनित वेदना में इसका उपयोग किया जाता है। जीर्ण सन्धिवात में विशेषकर वृद्ध मनुष्यों को आराम देनेवाली दो औषधियाँ होती हैं एक सोंठ और दूसरी चौबे हयात। रात्रि में सोते समय एक तोला सोंठ की फाट बनाकर देने से आमवात से ग्रसित वृद्ध स्त्री, पुरुषों को सुखदायक नींद आ जाती है। पेट में आफरा होने की वजह से अगर हृदय में शूल चलता हो तो उसमें सोंठ को देने से वायु सरकर हृदयशूल मिट जाता है।

सोंठ में कफनाशक धर्म होने की वजह से यह खाँसी और दूसरे कफ रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है।

*उपयोगः—*

*विषम ज्वर*—बकरी के दूध के साथ १॥ माशा सोंठ के चूर्ण की फक्की देने से गर्भवती स्त्री का विषम ज्वर छूट जाता है।

*आधाशीशी*—सोंठ को पानी के साथ पीसकर लेप करने से आधाशीशी की पीड़ा मिटती है।

*मस्तकशूल*—सोंठ को बकरी के दूध में पीसकर नस्य देने से कई प्रकार के दोषों से पैदा हुआ मस्तकशूल मिटता है।

*नेत्ररोग*—सोंठ, नीम के पत्ते या निम्बोली को पीसकर उसमें थोड़ा सेंधा नमक डालकर टिकिया बनाकर कुछ गर्म करके नेत्रों पर बाधने से नेत्रों की पीड़ा, खुजली और सूजन मिटती है।

*हृदय रोग*—सोंठ का कुछ कुनकुना क्वाथ पीने से हृदय रोग में लाभ होता है।

*आमवात*—सोंठ के एक तोला चूर्ण को काजी के साथ नित्य पीने से आमवात में लाभ होता है। सोंठ और गिलोय का क्वाथ बनाकर पीने से बहुत दिनों का पुराना आमवात मिटता है।

*मन्दाग्नि*—सोंठ के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर नित्य खाने से अग्निप्रदीप्त होती है।

*वमन*—सोंठ और बेल का क्वाथ पिलाने से वमन और विशूचिका में लाभ होता है।

*हिचकी*—सोंठ और हरड़ को पानी में पीसकर उसकी लुगदी को खिलाकर गरम जल पिलाने से श्वास और हिचकी मिटती है। सोंठ, आंवले और पीपल का चूर्ण शहद के साथ चटाने से हिचकी मिटती है। सोंठ के चूर्ण की फक्की देकर ऊपर से बकरी का गरम दूध पिलाने से भी हिचकी मिटती है।

*पक्षाघात*—सोंठ और सेंधे नमक को महीन पीसकर सुघाने से पक्षाघात में लाभ होता है।

*नेत्रपीड़ा*—सोंठ को पानी में घिसकर उसकी दो-तीन बून्द आँखों में टपकाने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

*वच्छनाग का विष*—सोंठ का चूर्ण खिलाने से वच्छनाग के विष की शान्ति होती है।

*उदर रोग*—चार माशे सोंठ का क्वाथ करके पिलाने से मन्दाग्नि, उदर रोग और जल के दोष मिटते हैं। सोंठ और जौखार की गर्म जल के साथ फक्की लेने से कई देशों के जल को पीने से पैदा हुए विकार मिटते हैं।

*आमजीर्ण*—सोंठ और धनिये का क्वाथ पिलाने से आमजीर्ण मिटता है।

*वादी की पीडा*—सोंठ और एरण्ड की जड को औटाकर पिलाने से वादी और सर्दी की पीडा मिटती है तथा सोंठ, कायफल और असगन्ध को पीसकर लेप करने से बादी की पीडा मिटती है।

*संग्रहणी*—कच्चे बेल का गूदा और सोंठ को गुड में मिलाकर मट्ठे के साथ पीने से सग्रहणी में लाभ होता है।

*पाण्डु रोग*—सोंठ के कल्क से सिद्ध किया हुआ घी पिलाने से पाण्डुरोग, ज्वर, खाँसी और सग्रहणी में लाभ होता है।

*कमर की शूल*—सोंठ के क्वाथ में अरण्डी का तेल मिलाकर पिलाने से कमर, बस्ति और कुक्षि की शूल मिटती है।

*आमवात*—सोंठ और गोखरू का क्वाथ प्रातःकाल नित्य पीने से आमवात और कटिशूल मिटता है।

*मूत्रकृच्छ्र*—सोंठ और गोखरू के क्वाथ में जौखार मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पिलाने से मूत्र-कृच्छ्र मिटता है।

*श्लीपद*—गोमूत्र के साथ सोंठ के चूर्ण की प्रतिदिन फक्की लेने से श्लीपद में लाभ होता है।

---

# सोया

सस्कृत—शतपुष्पा, अहिच्छत्रा, शताक्षी, सुपुष्पिका, कारवी इत्यादि। हिन्दी—सोया, सुवा, सेंघी सुवा। गुजराती—सुवा। मराठी—बालतशेप। बगला—शुल्फा, शोवा, सोवा। बम्बई—बाल्न्तशेप, सुवा। फारसी—शोल। तैलगू—सोम्या, शतकुपि। तामील—शतकुप्पि। उर्दू—सोया। इग्लिश—Dill (दिल) लेटिन—Peucedanum Graveolens (प्यूसीडेनम ग्रेवीओलेन्स)।

वर्णन—सोया का क्षुप धनिये के क्षुप से मिलता जुलता होता है। इसके पत्ते बहुत महीन होते हैं, फूल पीले रंग के होते हैं। इसके बीज धनिये के बीजों से मिलते जुलते होते हैं। इस वनस्पति की खेती सारे भारतवर्ष में होती है। इसके पौधे की तरकारी बनाई जाती है।

इसके १०० तोले बीजों में तीन चार तोले सुगन्धित तेल निकलता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सोया के बीज चरपरे, गरम, कड़वे, अग्निवर्द्धक, ज्वरनाशक, शान्तिदायक कृमिनाशक, पाचक और वात, कफ, व्रण, उदरशूल, नेत्ररोग और योनिशूल को दूर करनेवाले तथा पित्त वर्द्धक होते हैं ।

भावप्रकाश के मतानुसार सोया के बीज हलके, तीक्ष्ण, पित्तकारक, जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले चरपरे, गरम तथा ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल और नेत्ररोगों को दूर करनेवाले होते हैं ।

राज निघण्टु के मतानुसार सोया के बीज चरपरे, कड़वे, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, हलके, पित्तकारक वातनाशक और विशेष करके योनिशूल को नष्ट करनेवाले होते हैं ।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज गरम, कड़वे, शान्तिदायक, अतिसार को दूर करनेवाले अग्निवर्द्धक, मूत्रल, मृदुविरेचक, ऋतुस्राव नियामक, घाव को अच्छा करनेवाले, आंतों के दर्द को करनेवाले, सर्दी से होनेवाली वेदना को दूर करनेवाले तथा हिचकी और कर्णशूल में लाभदायक होते हैं यकृत, तिल्ली, मसाना, छाती, तथा उपदंश, पुरातन प्रमेह और बवासीर में लाभदायक होते हैं ।

डा० देसाई के मत से सोया, दीपन, वायुनाशक और गर्भाशय को उत्तेजना देनेवाली होती है । प्रसूति काल में इसके बीजों का उपयोग करना शास्त्रसम्मत है । बच्चों के उदरशूल और पेट के फूलने में इसका अ चूने के निवरे हुए पानी में मिलाकर दिया जाता है । इसके ताजा पत्तों को पीसकर गठानों को पकाने लिए उन पर लेप करते हैं ।

इसका फल चटनी और औषधि के बतौर काम में लिया जाता है । इसका निर्यास स्त्रियों को प्रसू के पश्चात् अग्निवर्द्धक वस्तु के बतौर दिया जाता है । इसके पत्तों पर तेल चुपड़ कर एक उत्तेजक पुलटि की तरह अथवा फोड़ों को पकाने के लिए उन पर बाँधते हैं ।

इसके बीज शान्तिदायक और अग्निवर्द्धक होते हैं, बच्चों की बीमारियों में, जैसे पाचन शक्ति कमजोरी उदरशूल, कब्जियत इत्यादि रोगों में यह एक बेजोड़ और आश्चर्यजनक वस्तु है । इन कामों लिए यह अर्क ( Dill water ) के रूप में दी जाती है । इंग्लैण्ड में प्रत्येक माता और नर्स रोगों में इसकी उपयोगिता से परिचित है ।

केस और महस्कर के मतानुसार इसका अर्क ६० बूँद की मात्रा में चपटे कृमियों (Hook worm को नष्ट कर देता है ।

उपयोगः—

फोड़े—इसके पत्तों को तेल से चुपड़ कर गर्म करके फोड़े फुंसियों पर बाँधने से वे जल्दी पक जाते हैं

*उदर शूल*—इसके बीजों का क्वाथ बना कर पिलाने से उदरशूल मिटता है।

*मन्दाग्नि*—सोंठ के साथ सोया के बीजों के चूर्ण की फक्की देने से अजीर्ण और मन्दाग्नि मिटती है।

*दूध की कमी*—सोया के बीजों को मिश्री के साथ मिलाकर खिलाने से अथवा सोया के बीजों का पाक बनाकर खिलाने से स्त्रियों के स्तनों में दूध बढता है। बालक होने के पश्चात् इनके बीजों की फाँट बना कर पिलाने से प्रसूता के हृदय को बल मिलता है। प्रसूता स्त्रियों के लिए यह एक बहुमूल्य वस्तु है।

*मूत्र की रुकावट*—सोया के बीजों के चूर्ण में मिश्री मिलाकर उसको दूध की लस्सी के साथ देने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

*गठान*—इसके बीजों को अरण्डी के साथ पीस कर गर्म करके लेप करने से गठान बिखर जाती है।

*पुराने घाव*—सोया के बीजों की राख भुरभुराने से पुराने घाव मिट जाते हैं।

---

# सोसन

*नामः*—

हिमालय—सोसन, शोति, चिड्डचि, चालनुन्दार। लेटिन—Iris Nepalensis (आयरिस नेपालेन्सिस)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसकी डालियाँ ६ से १२ इञ्च तक ऊँची होती है, इसके पत्ते फूल आने के समय में ६ इञ्च लम्बे होते हैं। इसके फूल धुंधले पीले और सुगन्धित होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में ५००० से १०००० फीट की ऊँचाई तक और खासिया पहाडियों में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

इसकी जड़ बाधानाशक, अनुलोमिक, मूत्रल और विशेष करके पित्तजनित शिकायतों में लाभ पहुँचाने वाली होती है। छोटे २ फोडे फुसियों पर यह लेप करने के काम में भी ली जाती है।

इसकी एक दूसरी जाति (Iris Ensata) धातु परिवर्तक होती है और रक्त को शुद्ध करनेवाले कई नुसखों में यह डाली जाती है। व्यभिचार जनित रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। यकृत के रोग और जलोदर में भी यह मुफीद मानी जाती है।

---

# सौंफ

*नामः—*

संस्कृत—मधुरिका, शतपुष्पा, मिश्रेया इत्यादि। हिन्दी–सौंफ। गुजराती—सौंफ, वरियारी। बंगाल–मौरी। मराठी—वडी शेप। बम्बई—वडी शोफ। तामील–सोही किराई। फारसी—बादियान। अरबी—रेझियाना अंग्रेजी Fennel (फेनील) लेटिन—Foeniculum Capillaceum (फोनीक्यूलम केपिलेक्यूम)।

वर्णन—सौंफ की खेती भारतवर्ष में सब दूर की जाती है। इसको सब कोई जानते हैं इसलिए इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से सौंफ पचने में चरपरी, गर्भदायक, सारक, कड़वी, चरपरी, मधुर, वीर्यजनक, अग्निदीपक, तथा वात, ज्वर, शूल, दाह, नेत्ररोग, प्यास, घाव, अतिसार और आम का नाश करती है।

राजनिघण्टु के मतानुसार सौंफ, मधुर, स्निग्ध, चरपरी, कफनाशक तथा वातपित्त के दोष, प्लीहा और कृमि को दूर करती है।

सौंफ रुचिकारक, वीर्यजनक तथा दाह और रक्तपित्त का नाश करनेवाली होती है।

सौंफ का अर्क शीतल, रुचिकारक, चरपरा, अग्नि को दीपन करनेवाला, पाचक, मधुर तथा तृष्णा, वमन, पित्त और दाह को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते नेत्रों की दृष्टि को बढाते हैं। इसके बीज तीक्ष्ण, मीठे, शान्तिदायक, स्तनों में दूध बढानेवाले मूत्रल और उत्तेजक होते हैं। इसका लेप बच्चों के पेट पर करने से यह उनकी आंतों की शिकायतों को दूर करता है। इसके अतिरिक्त छाती के रोग, तिल्ली के रोग, गुर्दे के रोग, मस्तक शूल, रज:स्रावरोध, खाँसी, दमा और सूजन में ये लाभ पहुँचाते हैं। नेत्रों की दृष्टि को भी ये तेज करते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार सौंफ सुगन्धित, दीपन, पाचक और मूत्रल होती है। पेशाब की जलन को कम करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इससे पेशाब साफ हो जाता है। आव, वमन और अजीर्ण से होनेवाली दस्तों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। बच्चों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी होती है। सूखी खाँसी और मुखरोगों में इसको मुँह में रखकर चूसने से लाभ होता है।

इसकी एक और जाति होती है जो ईरान से यहाँ आती है। इसको फारसी में बादियान और लेटिन में पिम्पिनेला एनिसूम (Pimpinella Anisum) कहते हैं। यह बादियान भी सुगन्धित, दीपन और वायुनाशक होती है। इसका तेल कफ के रोगों में बहुत उपयोग में लिया जाता है। इसके दूसरे गुण देशी सौंफ के समान ही होते हैं।

सौंफ का उपयोग एक सुगन्धित, उत्तेजक और शान्तिदायक पदार्थ की तरह होता है। इसकी जड़ विरेचक होती है और इसके पत्ते मूत्रल होते हैं। मद्रास के अन्दर इसके बीज व्यभिचार जनित रोगों में उपयोग में लिये जाते हैं।

यूरोप के अन्दर इसके बीज उत्तेजक, शान्तिदायक और अग्निवर्द्धक माने जाते हैं। पेट की वायु को दूर करने के लिए यह एक विश्वसनीय औषधि मानी जाती है। यह आंतों में होनेवाली मरोडी को शान्त करती है। बच्चों के उदरशूल को भी यह दूर करती है और स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित करती है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसके बीजों का तेल ६० बून्द की मात्रा में छोटे कृमियों (Hook worus) को नष्ट करने के लिए एक उत्तम वस्तु है।

*उपयोग—*

*ज्वर की दाह*—सौंफ का हिम बनाकर पिलाने से ज्वर की दाह मिटती है।

*आमातिसार*—सौंफ को घी में तलकर मिश्री के साथ मिलाकर खिलाने से आमातिसार मिटता है।

*बच्चों का अजीर्ण*—सौंफ की फाट बनाकर पिलाने से पेट की शूल और बच्चों का अजीर्ण मिटता है।

*अतिसार*—बेल की गूदा के साथ सौंफ का चूर्ण करके खिलाने से अजीर्ण मिटता है।

*विरेचन*—इसकी जड का क्वाथ पिलाने से विरेचन होता है।

*मूत्र की रुकावट*—इसके पत्तों का रस या फाट बनाकर पिलाने से पेशाब की रुकावट मिटकर पेशाब अधिक होने लगता है।

*नेत्रों की ज्योति*—सात माशे सौंफ और सात माशे मिश्री को सोते समय फक्की लेने से नेत्रों की की ज्योति बढती है।

*बनावटें—*

*स्वर्गीय ठण्डाई*—सौंफ, कासनी, काहू के बीज, कुल्फे के बीज, गुलाब के फूल, कमलगट्टे की मगज, चन्दन का बुरादा, खस, काली मिरच, सफेद मिरच, छोटी इलायची, ककडी के बीजों की मगज, खरबूजे के बीजों की मगज और पेठे के बीजों की मगज ये सब चीजें दो दो तोला लेकर कूटकर एक बोतल में रख लें।

गरमी के दिनों में उपरोक्त स्वर्गीय ठण्डाई को एक तोले की मात्रा में लेकर पांच सात बदाम की मगज के साथ सिल पर खूब महीन पीसें और एक गिलास जल में छानकर पी लें। अगर किसी को भाग माफगत हो तो दो चार रत्ती भांग भी एक खुराक में डाल दें। जो लोग गरमी के दिनों में नियमितरूप से इस ठण्डाई का सेवन करते हैं उन्हें गरमी से होनेवाली कोई व्याधियाँ नहीं होती,

लूका लगना, पित्तज्वर, गरमी से सिर का चकराना, दस्त, वमन, हैजा इत्यादि गरमी से होनेवाली अनेक प्रकार की व्याधियों से वे बचे रहते हैं। ग्रीष्मकाल में यह ठण्डाई एक अमृत के तुल्य वस्तु है।

---

## हब-एल-घर

नामः—

भारतीय बाजार—हब्-एल-घर। यूनानी—झकनी, झपनी। इंग्लिश—Sweet Bay ( स्वीट-बे )। लेटिन—Laurus Nobilis ( लौरस नोबिलिस )।

वर्णन—हब्-एल-घर के नाम से एक प्रकार के काले और भूरे रंग के सूखे हुए फल मिश्र देश से यहाँ पर बिकने के लिए आते हैं। ये मुसलमान पसारियों के यहाँ बिकते हैं। ये लम्बगोल, सुगंधित और स्वाद में तीखे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि सुगन्धित और उत्तेजक होती है। मज्जातंतु और मस्तिष्क को उत्तेजना देने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसके फलों को शराब में मिलाकर कफ रोगों में देते हैं। इसको देने से ज्वर कम होता है, कफ छूटता है और रोगी को उत्तेजना मिलती है।

---

## हथजोड़ी

इस वनस्पति का वर्णन 'बखूर-इ-मरियम' के नाम से इस ग्रन्थ के सातवें भाग में देखें।

---

## हलियून

नामः—

हिन्दी—हलियून। इंग्लिश—Asparagus(एस्पेरेगस)। लेटिन—Asparagns officinalis (एस्पेरेगस ऑफिसिनेलिस)। अरबी—हलयून। ईरान—हालियून।

वर्णन—यह शतावरी के वर्ग की एक वनस्पति होती है इसके फूल छोटे और कुछ हरापन लिये हुए सफेद होते हैं। इस वनस्पति की खेती उत्तरी भारत में की जाती है। इसके अंकुरों की तरकारी बनाई जाती है इसके फल हलियून के नाम से बिकते हैं वे ईरान से यहाँ आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति मूत्रल, मृदु विरेचक हृदय को शक्ति देनेवाली और उपशामक होती है। इसके अंकुर वायु नाशक, मृदु विरेचक और मूत्रल होते हैं, इसके फल गर्भ स्थापक और जड़ें स्निग्ध तथा पौष्टिक होती हैं।

इसकी जड़ों में इसके अंकुरों से मूत्रल तत्व अधिक तादाद में पाये जाते हैं। इसकी जड़ों का शीत निर्यास पीलिया रोग को नष्ट करने के लिए दिया जाता है यह यकृत की जड़ता या सुस्ती को दूर करता है।

इग्लैण्ड में इस वनस्पति के पचाग से एक टिंक्चर बनाया जाता है जो पेशाब की जलन और सधिवात तथा गठिया में उपयोगी समझा जाता है।

अमेरिका में यह वनस्पति निर्विवाद रूप से एक उपशामक पदार्थ मानी जाती है और हृदय की सब प्रकार की शिकायतों में यह एक उपशामक और शान्तिदायक द्रव्य की तरह दी जाती है। नाडी की तेज गति को ठीक करने के लिए भी इसका उपयोग होता है।

इसके फल को शराब के साथ देने से स्त्री का गर्भाशय गर्भधारण के योग्य हो जाता है। इसकी जड़ें पथरी, गर्भाशय का शूल, हृदय की धडकन, हृदयोदर, श्लीपद, वातरक्त इत्यादि रोगों में दी जाती हैं।

---

# हरड़

नामः—

सस्कृत—हरीतिकी, अभया, पथ्या, अमृता, अव्यथा, शिवा, वयस्था, विजया, जीवन्ती, सुधा, बल्या, रसायनफला, रुद्रप्रिया, सुधोद्भवा, भिषक् प्रिया, प्राणदा, जीव्या, देवी, दिव्या, गिरिजा इत्यादि। हिन्दी—हरड, हर्रे। बगला—हरीतकी। गुजराती—हरड़े। मराठी—हरडा। पजाब—हर्रे। तेलगू—हरीतिकी, इग्लिश—Myrobalans (मायरो बैलेन्स) लेटिन—Terminalia Chebula (टार्मिनेलिया चेबुला)।

वर्णन—हरड के वृक्ष उत्तरी भारत, बगाल, बम्बई प्रान्त, कोकण, मद्रास प्रेसीडेन्सी, काठियावाड़ इत्यादि भारत के अनेकानेक स्थानों में पैदा होते हैं। मगर हिमालय और पार्श्वनाथ पहाड पर पैदा होनेवाली हरड उत्तम जाति की होती है। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इस वृक्ष का पिण्ड लम्बा और सीधा होता है। इसकी छोटी शाखों, निकलते हुए पत्तों और छोटे कोमल पत्तों पर लोहे के जङ्ग के समान और कभी-कभी रूपहरी रंग के रुँएँ होते हैं। इसके अलग-अलग थोडी-थोडी दूर पर अडूसे के पत्तों के समान अथवा धावडी के पत्तों के समान तीन से आठ इच तक लम्बे पत्ते लगते है। इसके फूल थोड़े

सफेद अथवा पीले रंग के होते हैं उनमें बहुत दुर्गन्ध आती है। इसका फल एक से लेकर दो इंच तक लम्बा होता है। हर एक फल पर पाँच स्पष्ट रेखाएँ होती हैं।

इन वृक्षों पर एक प्रकार के अपरिपक्व काली द्राक्ष के समान फल लगते हैं। ये सूखने पर काले, लम्बगोल, बाँके टेढे और छोटे-छोटे होते हैं। इन्हें मराठी में बाल हरड और हिन्दी में जौ हरड कहते हैं इनका विरेचन के द्रव्यों मे विशेष उपयोग होता है।

हरड एक ऐसी वनस्पति है जिसके सम्बन्ध में आयुर्वेद के प्रवर्त्तक महर्षियों ने बहुत बारीक अध्ययन किया है। वे लोग इस महान वनस्पति के बहुत निकट सम्पर्क में रहे हैं, और उन्होंने इसकी भिन्न-भिन्न जातियों का, इसके सूक्ष्म रासायनिक तत्वों का और मनुष्य शरीर पर होनेवाले इसके विलक्षण प्रभावों का बहुत ही दिलचस्पी से अध्ययन किया था।

उनके मत से हरड की सात जातियाँ होती हैं। विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती और चेतकी।

विजया हरड तुम्बी के समान आकृति की होती है, रोहिणी हरड गोल होती है, पूतना हरड छोटी गुठली वाली होती है, अमृता नामक हरड मोटी होती है, अभया हरड पाँच रेखावाली होती है, जीवन्ती हरड स्वर्ण के समान पीले रग की होती है और चेतकी हरड तीन रेखावाली होती है। इनमें चेतकी हरड काली और सफेद के भेद से दो प्रकार की होती है। सफेद जाति छः अङ्गुल लम्बी और काली जाति ( सम्भवतः यही जौ हरड या बाल हरड है ) एक अगुल लम्बी होती है।

विजया हरड विन्ध्याचल पर्वत में पैदा होती है। पूतना और चेतकी हरड हिमालय पर्वत में पैदा होती है। रोहिणी हरड सिन्धु नदी के तीर पर होतो है। अमृता और अभया हरड चम्पा देश में बहुत होती है, जीवन्ती हरड सौराष्ट्र देश में उत्पन्न होती है और विजया हरड सर्वत्र पैदा होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल जो हरड बाजार में मिलती है वह विशेष कर विजया जाति की होती है क्योंकि उसका आकार तुम्बी के समान लम्बगोल होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान में हरड एक अत्यन्त प्रभावशाली, दिव्य और रसायन औषधि मानी गई है। प्राचीन चिकित्सा शास्त्रियों की इस वनस्पति पर कितनी अधिक श्रद्धा थी यह उनके द्वारा इस वनस्पति के रक्खे हुए नामो से ही प्रकट होता है। इसकी विवेचना करते हुए एक स्थान पर लिखा है:—

हरीतिकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतिकी ॥

अर्थात्—हरीतिकी मनुष्यों के लिए माता के समान हित करने वाली है कदाचित् माता तो कभी-कभी क्रोधित भी हो जाती है मगर पेट में गई हुई हरीतिकी कभी कुपित नहीं होती।

'यस्य माता गृहे नास्ति तस्य माता हरीतिकी'

जिसकी रक्षण करनेवाली माता गृह में न रही हो उसकी माता हरीतिकी को समझना चाहिए।

हरड के सम्बन्ध में प्राचीन वनस्पति शास्त्र के अन्दर बहुत अधिक अध्ययन किया गया है। इसके अन्दर कौन कौन से रस रहते हैं, शरीर के अन्दर भिन्न २ अवयवों पर इसके क्या प्रभाव होते हैं, सारे शरीर के सगठन पर यह क्या असर डालती है इन सब बातों का बड़ा विस्तार से विवेचन किया गया है।

हरड के गुण धर्म का विवेचन करते हुए निघण्टु रत्नाकर में लिखा है कि—

हरीतिकी तु सप्रोक्ता, पञ्चभिस्तु रसैर्युता।
लवणे च सा हीना योगवाही रसायनी॥
अग्नि दीप्तिकरी लघ्वी, सरा मेध्या च लेखना।
वातानुलोमनी हृद्या चक्षुष्या स्मृति कारका॥
वयसः स्थापनी बल्या बुद्धिदा कुष्ठ नाशिनी।
विवर्णता नाशिनी वै चेन्द्रियाण प्रसादनी॥
शिरो रोग नेत्ररोग वैस्वर्य्यं विषम ज्वरम्।
पुगाण च ज्वर पाण्डु हृद्रोग कामला तथा॥
शोष, शोथ मूत्रघात ग्रहणीं चातिसारक।
अश्मरी च ज्वर मेह कृमि श्वासं विषोद्गम्॥
कास धर्म मलस्तम्भ मानाहं कर्णरोगकम्।
अर्शः प्लीहा त्रिदोषं च गुल्म हिक्का वृण तथा॥
उरु स्तम्भ च शूल च नाशयेद रुचिं तथा।

अर्थात्—हरड पाँच रसों से ( खट्टा, मीठा, कडवा, कसैला, चरपरा ) युक्त होती है सिर्फ लवण या खारा रस इसमें नहीं होता। यह योगवाही, रसायन, अग्निदीपक, हलकी, दस्तावर, मेधाजनक, लेखन, वात को अनुलोमन करनेवाली, हृदय को बल देनेवाली, नेत्रों की ज्योति को बढानेवाली, स्मृतिकारक, अवस्था स्थापक, बलकारक, कोढ को नष्ट करनेवाली, विवर्णतानाशक, इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाली तथा मस्तक रोग, नेत्र रोग, स्वर भग, विषम ज्वर, जीर्णज्वर, पाण्डु रोग, हृदय रोग, कामला, शोष, सूजन, मूत्राघात, सग्रहणी, अतिसार, पथरी, वमन, प्रमेह, कृमि, श्वास, विष, उदर रोग, खाँसी, पसीना, मल-स्तम्भ, आनाह, कर्ण रोग, बवासीर, प्लीहा, गुल्म, हिचकी, व्रण, उरुस्तम्भ, शूल और अरुचि का नाश करती है।

हरड़ की मज्जा में मधुर रस, नसों में अम्ल रस, डठल में तिक्तरस, छाल में कटु रस और अस्थियों में कसैला रस रहता है।

हरड़ दाँतों से चबाकर खाने से अग्नि को बढाती है, पीस कर खाने से मल का शोधन करती है। पकाई हुई खाने से मल को रोकती है और भुनी हुई खाने से त्रिदोष को नष्ट करती है।

हरड को भोजन के साथ सेवन करने से बुद्धि और बल को बढाती है, इन्द्रियों को प्रकाशित करती है, वात, पित्त और कफ के दोषों को नष्ट करती है तथा मल और मूत्र को निकाल्ती है। भोजन के पश्चात् सेवन की हुई हरड अन्न और जल के दोषों को दूर करती है तथा वात, पित्त और कफ से उत्पन्न दोषों को दूर करती है।

हरण लवण के साथ कफ को, मिश्री के साथ पित्त को और घी के साथ वात के रोगों को और गुड साथ सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करती है।

हरड वर्षा ऋतु में सेन्धे नमक के साथ, शरद् ऋतु में पीपल के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ और ग्रीष्म ऋतु में गुड के साथ परम रसायन का काम करती है।

हरड से दूनी मुनक्का द्राक्ष लेकर और उनको घोटकर बहेडे के बराबर गोलियाँ बनावें। इस कल्याण-कारी गोली को प्रातःकाल में जो मनुष्य सेवन करता है वह पित्त रोग, हृदय रोग, रक्त दोष, विषम ज्वर पाण्डु रोग, वमन, कुष्ठ, खाँसी, कामला, अरुचि, प्रमेह, आनाह, गुल्म, इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों पर विजय प्राप्त करता है।

*उत्तम हरड की पहचान*—जो हरड नवीन, स्निग्ध, घन, गोल, भारी और पानी में डालने पर डूब जाती है वह हरड अत्यन्त गुणवाली और श्रेष्ठ होती है। जो हरड उपरोक्त गुणों से युक्त हो और वजन में चार तोल के करीब हो उसे सर्वगुण सम्पन्न समझना चाहिए।

महर्षि चरक लिखते हैं कि रसायन कार्य के लिए हरड आँवला इत्यादि फल हिमालय में उत्पन्न हुए ही लेना चाहिए। श्रेष्ठ हिमालय पर्वत औषधियों की उत्कृष्ट भूमि है अतः अनुकूल ऋतुओं में उत्पन्न हुए फलों को हिमालय पर्वत से ही समय समय पर यथाविधि ग्रहण करें। वे फल रस और वीर्य से पूर्ण होना चाहिए। सूर्य की धूप, जल, छाया और वायु से तृप्त होना चाहिए अर्थात् समय समय पर धूप आदि से जिनका संसर्ग होता रहता हो। जो जले, सड़े, गले, चोट खाये हुए या रोग युक्त न हों।

हरड के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं कि—"संसार के अन्दर दो प्रकार के रसायन द्रव्य होते हैं। एक अवस्था स्थापक अथवा जीवनी शक्ति ( Vitality ) को बढाने वाले और दूसरे रोग निवारक ( Immunity ) शक्ति को बढाने वाले। अवस्थास्थापक द्रव्यों में आँवला सर्व श्रेष्ठ होता है और रोगनिवारक द्रव्यों में हरड अपनी जोड नहीं रखती। आँवला शीतवीर्य होता है और हरड उष्णवीर्य।'

आगे चलकर महर्षि चरक लिखते हैं कि—हरड कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डु रोग, मद, अर्श, संग्रहणी, पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, खाँसी, प्रमेह, आनाह, प्लीहा, नवीन उदर रोग, स्वरभंग, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, शोथ, तमक श्वास, वमन, नपुंसकता, अङ्गों की शिथिलता, छाती और फुफ्फुस में कफ का भर जाना, स्मृति और बुद्धि का नाश आदि रोगों को शीघ्र ही जीत लेती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कच्चा फल संकोचक और मृदुविरेचक होता है। यह अतिसार और रक्तातिसार में लाभदायक होता है। इसका पका हुआ फल विरेचक पौष्टिक और पेट के आफरे को दूर करनेवाला होता है। यह रक्तवर्द्धक होता है तथा नेत्र रोग, बवासीर और जुकाम में लाभदायक होता है। यह मस्तिष्क, नेत्र और मसूड़ों को मजबूत करता है। पक्षाघात रोग में भी यह उपयोगी है।

अरब के लोगों का विश्वास है कि जिस प्रकार घर की सम्हाल रखने में स्त्री दक्ष होती है उसी प्रकार पेट की सम्हाल रखने में हरड़ एक बहुत उपयोगी वस्तु है।

हरड का प्रधान कार्य शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल कर शरीर के प्रत्येक अङ्ग की क्रियाशीलता को व्यवस्थित करना है। पेट में, रक्त में, मस्तिष्क में, हृदय में, जननेन्द्रियों में जहाँ भी कहीं विजातीय सामग्री होगी, वहीं से यह उसे बाहर निकाल कर उस स्थान का शोधन कर देगी। इसी विलक्षण सामर्थ्य की वजह से ही प्राचीन चिकित्सा विज्ञान में इसकी इतनी कीर्ति है। आधुनिक पाश्चात्य चिकित्साविज्ञान ने अभी तक इस वनस्पति को पूरी कद्र के साथ नहीं अपनाया है, मगर आयुर्वेदिक चिकित्सक हजारों वर्षों से इस वस्तु का उपयोग बहुत सफलता के साथ, एक तात्कालिक रोग निवारक औषधि की बतौर नहीं प्रत्युत एक जीवन विनिमय क्रिया को सुधारने वाली रसायन औषधि की बतौर करते आये हैं। हमारे यहाँ छोटे बच्चों को जन्म के साथ ही हरड़ की घुटी देने का रिवाज है। हरड की इस घुटी से तात्कालिक उपद्रवों से तो बच्चा सुरक्षित रहता ही है मगर उसके रक्त में ऐसी रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो जाती है जो जीवन भर उसका साथ देती है।

हरड पेट में जाकर पहले कुछ दस्तों के द्वारा शरीर में एकत्रित विजातीत द्रव्यों को बाहर निकालती है। जब ये विजातीय तत्व बाहर निकल जाते हैं तब ये दस्त लगना अपने आप बन्द हो जाती हैं। इन विजातीय तत्वों के निकल जाने के पश्चात् जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है और संग्रहणी तथा अजीर्ण की वजह से होनेवाले अनियमित दस्त भी बन्द हो जाते हैं। पृथ्वी के ऊपर जितनी जाति के फल हैं उनमें बिना किसी प्रकार की प्रतिक्रिया या नुकसान पहुँचाये केवल हित ही हित करनेवाले तीन प्रकार के फल प्राचान ऋषियों को दिखलाई दिये। ये तीनों फल हरड़, बहेडा और आँवला हैं जिनका सम्मिलित नाम उन्होंने 'त्रिफला' दिया।

प्राचीन वैद्यों ने इस त्रिफले का अथवा इसमें पडनेवाली एक एक वस्तु का स्वतन्त्र रीति से मानव शरीर में होनेवाली लगभग सब प्रकार की व्याधियों पर उपयोग किया है, इनमें भी हरड का उपयोग सबकी अपेक्षा अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। आजकल के वैद्य भी दमा, खाँसी, प्रमेह, नेत्ररोग, अर्श, कुष्ठ, सूजन, उदररोग, कृमि, स्वरभङ्ग, कब्जियत, विषमज्वर, वायुगोला, कामला, शूल, संग्रहणी इत्यादि रोगों पर भिन्न २ अनुपानों के साथ हरड का उपयोग सफलतापूर्वक करते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार हरड मृदु विरेचक, बवासीर को नष्ट करनेवाली, सूजन नाशक, रक्त संग्राहक, कामोद्दीपक, व्रणरोपक और अवस्था स्थापक होती है। यह सारे शरीर की विनिमय क्रिया को सुधारती है इसलिए इसको रसायन कहते हैं। इससे भूख लगती है, अन्न पचता है और दस्त साफ होता

है। कोठा साफ करने के लिए इसको देने पर पहले दस्त लगकर कोठा साफ हो जाता है मगर साफ होने पर फिर दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। इससे न तो पेट में मरोडी चलती है, न जम्भाइयाँ आती हैं, और न किसी प्रकार का कष्ट होता है। दाल चीनी के समान कोई सुगन्धित पदार्थ मिला देने से इसकी क्रिया और भी सुधर जाती है। इसको लम्बे समय तक सेवन करने से भी किसी प्रकार हानि नहीं होती। इसके सेवन से हृदय और रक्तवाहिनियों की शिथिलता दूर होती है। रक्ताभिसरण क्रिया में सुधार होने से मस्तिष्क में अधिक रक्त पहुँचता है, जिससे मस्तिष्क में तरावट आती है, नींद अच्छी आती है, वीर्य गाढा होता है और स्त्री सम्भोग में आल्हाद उत्पन्न होता है, शरीर का रंग सुधरता है और वजन बढता है। हरड़ की यह क्रियाएँ कम से कम इसको एक महीने तक लेते रहने पर दिखलाई देती हैं।

बालहरड या जौहरड मृदु विरेचक, वायुनाशक और बलकारक होती है। यह बड़ी हरड के समान रसायन धर्मवाली नहीं होती, इसकी क्रिया सिर्फ पाचन नलिका पर होती है। नमक मिलाने से इसकी क्रिया विशेष उत्तम हो जाती है।

कुपचन रोगों में बडी हरड बहुत उत्तम वस्तु है, अतिसार आव और आंतों की शिथिलता में इसका उत्तम प्रभाव दिखलाई देता है। बवासीर के रोग में इसको सेंधे नमक के साथ देते हैं खूनी बवासीर में इसका क्वाथ बनाकर दिया जाता है। अर्श की सूजन को उतारने और उसकी वेदना को दूर करने के लिए इसको पानी में पीसकर लेप करते हैं।

जीर्णज्वर और प्लीहा की वृद्धि में हरड का चूर्ण बीड लवण के साथ दिया जाता है। यद्यपि इससे प्लीहा का सकोचन होने में अधिक समय लगता है फिर भी उसके दरमियान रोगी के स्वास्थ्य में काफी सुधार हो जाता है। किसी भी स्थान से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने में भी हरड एक उत्तम वस्तु है।

कितने ही लोगों को अधिक पसीना आने, नाक बहने और सर्दी होने पर बहुत लम्बे समय तक कफ पडने की आदत होती है और कुछ मनुष्यों को जरा सी चोट लगते ही पककर पीब बहने की आदत होती है ऐसे मनुष्यों को हरड का सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

वीर्य पतला हो गया हो तथा जननेन्द्रिय में शिथिलता आ गई हो तो हरड के रसायन का सेवन करने से वह दूर हो जाती है।

मुख के व्रणों पर इसका लेप किया जाता है, गले की सूजन या गले के भीतर गठान होने पर हरड को पानी में पीसकर लेप करते हैं।

बाल हरड या जौ हरड, अजीर्ण की वजह से होनेवाले दस्त, मरोडी, जीर्ण अतिसार, जीर्ण आँव, गुल्म, प्लीहावृद्धि, और बवासीर रोग में बहुत गुणकारी होती है। हमेशा की आदतन कब्जियत में अङ्गरेजी औषधि कास्कारा सेग्रेडा जैसा लाभ बतलाती है उससे भी अधिक यह छोटी हरड दिखलाती है। कब्ज को नष्ट करने के लिए कई महीनों तक इसको देते रहने पर भी कोई हानि नहीं होती। कब्ज की वजह से होनेवाले बवासीर में भी यह उपयोगी होती है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार हरड़ बवासीर रोग में बहुत उपयोगी होती है। इसके चूर्ण को गुड़ में मिलाकर खाने से खूनी और भीतरी बवासीर में बहुत लाभ होता है।

सुश्रुत के मतानुसार श्लीपद रोग में हरड़ का पिसा हुआ चूर्ण ताजा गौ मूत्र के साथ देने से बहुत लाभ होता है। लगातार कायम रहनेवाली हिचकी में हरड का चूर्ण गरम पानी के साथ देने से हिचकी वन्द हो जाती है।

*रसायनिक विश्लेषण—*

पके हुए हरड के फल में २५ प्रतिशत टैनिक एसिड ( कषायाम्ल द्रव्य ) एक कड़ुवा पदार्थ और राल रहती है। बालहरड़ में हरे रंग की तेलिया राल रहती है। जो अलकोहल में घुलनशील होती है।

*हरड़ का रसायन प्रयोग*—महर्षिचरक ने लिखा है पुनर्यौवन प्राप्त करने के लिए तथा काया-कल्प करने के लिए हरड़ के बनाये हुए रसायन का कुटि प्रावेशिक विधि से सेवन करना चाहिए। कुटि प्रावेशिक विधि का विवेचन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में आवले के प्रकरण में किया जा चुका है।

*उपयोगः—*

*दमा*—हरड को कूटकर चिलम में भरकर उसका धूम्रपान करने से दमे का दौरा मिटता है।

*आमातिसार*—हरड का मुरब्बा खिलाने से आमातिसार और मन्दाग्नि मिटती है।

*घाव*—फैले हुए घाव को हरड के क्वाथ से धोने से वह सिमिट जाता है।

अग्निदग्ध—हरड को पानी में घिसकर उसमें क्षारोदक और अलसी का तेल मिलाकर, अग्नि से जले हुए या गरम जल से जले हुए स्थान पर लेप करने से घाव बहुत जल्दी अच्छे हो जाते हैं।

बद्धकोष्ठ—हरड़, सनाय और गुलाब के गुलकन्द की गोलियाँ बनाकर खाने से बद्धकोष्ठ मिटता है।

*दंतरोग*—हरड के चूर्ण का मंजन करने से दाँत साफ और निरोग रहते हैं। हरड़ और कत्थे को मिलाकर चूसने से दाँत मजबूत होते हैं।

*आधाशीशी*—हरड़ की गुठली को पानी के साथ पीसकर लेप करने से आधाशीशी मिटती है।

*आँख से पानी बहना*—इसकी छाल को महीन पीसकर अञ्जन करने से आँख से पानी का बहना बन्द हो जाता है। हरड को रात भर पानी में भिगोकर प्रातःकाल उस जल से आँखें धोने से आंखें बहुत शीतल रहती हैं और उनकी ज्योति बढती है।

*मद और मूर्च्छा*—हरड के क्वाथ से सिद्ध किये हुए घी का सेवन करने से मद और मूर्च्छा मिटती है।

*रक्तपित्त*—हरड़ के चूर्ण को अडूसे के स्वरस की सातभावना देकर शहद के साथ चाटने से रक्त-पित्त मिटता है।

*विषमज्वर*—शहद के साथ हरड का चूर्ण चटाने से विषमज्वर छूट जाता है।

*ववासीर*-हरड, बहेडा और आंवला एक २ तोला, मिश्री ३ तोला इन सब को गुलाबजल में घोट कर गोलियाँ बना लेना चाहिए, इन गोलियों को सात माशे की मात्रा में सेवन करने से ववासीर मिटती है।

*मोतियाविन्द*—हरड की मींगी को पानी में ३० पहर तक घोटकर गोली बनाकर अञ्जन करने से मोतियाविन्द की प्रारम्भिक अवस्था में लाभ होता है।

*मुखरोग*-हरड़ के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से सब प्रकार के मुखरोग मिटते हैं।

*अम्लपित्त*—हरड के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से अथवा गुड के साथ गोली बनाकर खिलाने से अम्लपित्त मिटता है।

*पाण्डु रोग*—हरड को गौमूत्र में पकाकर खिलाने से पाण्डु रोग और शोथ मिटता है।

*श्लीपदरोग*—हरड को अरण्डी के तेल में पकाकर सात दिन तक पीने से श्लीपद रोग में लाभ होता है। हरड को गौमूत्र के साथ पीस कर पीने से भी श्लीपद रोग मिटता है।

*अण्ड वृद्धि*—जौ हरड और सेंधे नमक को अरण्डी के तेल और गौमूत्र में पकाकर गरमजल के साथ लेने से पुरानी अण्डवृद्धि मिटती है अथवा इसके चूर्ण को अरण्डी के तेल में मिलाकर चाटने से अग्रशी और अण्ड वृद्धि मिटती है।

*वातरक्त*—तीन चार जौ हरड की दुगने गुड में गोली बनाकर उसको खाकर ऊपर से नीम गिलोय का क्वाथ पीने से कुछ दिनों में बढ़ा हुआ वातरक्त भी मिट जाता है।

बनावटें—

*अमृत हरीतिकी*—उत्तम बडी जाति की हरड एक सौ लेकर उनको गाय के मट्ठे में उबालना चाहिए। जब हरडे अच्छी तरह पक जाय तब उनको मट्ठे में से निकाल कर उनमें से प्रत्येक हरड का सिरा काट कर उसमें से गुठलियाँ निकाल डालना चाहिए। उसके पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपलामूल, चित्रक की जड़, चव्य, सेंधा नमक, सचर नमक, बीड नमक, समुद्र नमक, अजवायन, यवक्षार, सज्जी-क्षार, भुनी हुई हींग और लवग ये सब चीजें दो दो तोला और निसोत आठ तोला इन सब चीजों का चूर्ण करके उसे तीन दिन तक नींबू के रस में भिगो देना चाहिए। फिर उसी चूर्ण को उन गुठली निकाली हुई हरडों में भर देना चाहिए। फिर उन हरडों को धूप में रखकर अच्छी तरह सुखा कर एक बोतल में भर कर रख देना चाहिए। यह अमृत हरीतिकी कहलाती है।

इन हरड़ों में से प्रतिदिन सवेरे एक हरड लेकर सेवन करने से अजीर्ण और मन्दाग्नि से होनेवाले नाना प्रकार के रोग दूर होते हैं। जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है। देश देशान्तरों का पानी लगने से होनेवाली बीमारियाँ भी मिट जाती हैं। हैजे के दिनों में अगर प्रतिदिन एक हरड का सेवन कर लिया जाय तो हैजा होने का भय नहीं रहता।

*अगस्त्य हरीतिकी*—बेल की जड, अरणी की जड, अडूसा की जड, पाडल की जड, गंभारी की जड़ बड़ी कटेरी की जड, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, गोखरू की जड, कौंच की जड, शंखाहुली, कंघी की जड, गजपीपर, भारंगी, कूट, अपामार्ग की जड, पीपला मूल, चित्रक की जड, ये सब चीजें आठ-२ तोला लेकर, जौ कुट करके बत्तीस सेर पानी में औटाना चाहिए और इस पानी में २५६ तोला जौ तथा एक सौ उत्तम जाति की बड़ी हरड लेकर एक पतले कपडे की पोटली में बाँधकर डाल देना चाहिए, इस पानी को औटाते २ जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेना चाहिए और हरडों में से गुठलियाँ निकालकर उनके गर्भ को तथा जौ को एक मजबूत खादी के कपडों में डाल कर छान लेना चाहिए और उनमें से निकले हुए कूचों को फेंक देना चाहिए। इस प्रकार निकले हुए जौ और हरड के गर्भ को सोलह तोला घी में भून लेना चाहिए। फिर उस क्वाथ के आठ सेर पानी में पुराना गुड चार सौ तोला और हरड़ तथा जौ का गर्भ मिला कर आँच पर चढ़ा देना चाहिए। जब वह अवलेह के समान हो जाय तब उसे नीचे उतार कर उसमें सोलह तोला छोटी पीपर का चूर्ण तथा तज, तमाल पत्र, इलायची और नागकेशर का एक एक तोला चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह मिला लेना चाहिए। ठण्डा होने के पश्चात् उसमें सोलह तोला शहद भी मिला लेना चाहिए। यह अगस्त्य हरीतिकी कहलाती है जिसका आविष्कार महर्षि अगस्त्य ने किया था।

इस अगस्त्य हरीतिकी को एक से लेकर चार तोले तक की मात्रा में सवेरे शाम सेवन की जाय तो दमा, खाँसी, क्षय, हिचकी, हृदय रोग, पाण्डु, सग्रहणी इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाती है।

*अभयामोदक*—हरड, बहेडा, आँवला, नागरमोथा, तज, तमाल पत्र, इलायची के बीज, नागकेशर, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपर, धनिया, बरियारी, और लौंग ये सब चीजें एक एक तोला, निसोत की जड की छाल आठ तोला, सनाय आठ तोला और उत्तम जाति की गुठली निकाली हुई बडी हरड ३२ तोला लेकर सब का महीन चूर्ण करके चौंसठ तोला शक्कर की गोलीबन्द चासनी में इस चूर्ण को मिला कर ऊपर से सोलह तोला गुलाब के फूल और सोलह तोला बीज निकाली हुई काली द्राक्ष मिला कर खूब हिलाकर एक जीव कर देना चाहिए। फिर इसको वैसे ही या गोलियाँ बाँध कर बरणी में भर देना चाहिए।

यह अभयामोदक एक उत्तम और सौम्य विरेचक है, इसको ६ माशे से एक तोला की मात्रा में खाकर ऊपर से गरम जल पीना चाहिए। इसके सेवन से भोजन के पश्चात् होनेवाला उदरशूल, खट्टी डकारें, अम्लपित्त, बवासीर इत्यादि रोगों में लाभ होता है। हमेशा की कब्जियत को दूर करने के लिए यह एक उत्तम औषधि है। इससे बिना पेट में किसी प्रकार की काट हुए, बिना आँतों में जलन हुए सौम्य विरेचन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त हरड़ और आँवले के सयोग से बननेवाले दिव्य [illegible] इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में आँवले के प्रकरण में दे दिया गया है है।

---

# हरकुच कांटा

*नाम:—*

संस्कृत–हरिकुस। हिन्दी–हरकुच कांटा, हर्कुकान्त। बङ्गाल–हरगोला, हरकुचकांटा, केप्टकी। बम्बई—निवागुर। मराठी–माराण्डी, मेण्डली मोराला। तामील—कलुदेमुलि। तैलगू—एतिचिल्ला। इंग्लिश–Sea Holly (सीहोली) लेटिन—Acanthus Ilicifolius (एकेन्थस इलिसि फोलियस)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा छोटी जाति का क्षुप खारी जमीनों में अधिक पैदा होता है। इसके पत्ते ७-५ से लेकर १५ सेंटीमीटर तक लम्बे और ५ से लेकर ६ ३ सेंटीमिटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद और बैंगनी होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में समुद्री किनारों पर पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह वनस्पति क्षार स्वभावी, स्निग्ध, दुग्धवर्द्धक और कफनाशक होती है। यह एक उत्तम औषधि है क्योंकि इसमें कफ को ढीला करनेवाला क्षार और उसको बाहर निकाल देनेवाला स्निग्ध पदार्थ दोनों साथ रहते हैं। प्राचीन कफ प्रधान रोगों में और दमें में यह औषधि विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होती है। आमवात,वातनाड़ी की पीड़ा और अर्द्धाङ्ग वायु में इसको द्राक्षासव के साथ देते हैं। अम्लपित्त में इसके पचांग का क्षार दिया जाता है। सूजन पर इसके पत्तों को पीस कर बाँधा जाता है।

कोंकण में इस वनस्पति का काढा मिश्री और जीरा मिला कर खट्टी डकारों के साथ होनेवाले अजीर्ण में देते हैं। गोआ के अन्दर सन्धिवात, गृध्रसी और स्नायु शूल पर इसके पत्तों पर तेल लगाकर गर्म करके बाँधते हैं और उन पर सेंक करते हैं।

सियाम में यह वनस्पति हृदय को शक्ति देनेवाली और पक्षाघात तथा दमें के रोग में उपयोगी मानी जाती है।

रीड के मतानुसार इसकी कोमल डालियों और पत्तों को पानी के साथ महीन पीसकर साँप की काटी हुई जगह पर लेप करने के काम में लेते हैं।

केस और महस्कर के मत से यह वनस्पति सर्प विष में निरुपयोगी है।

मात्रा—इसके पत्तों के स्वरस की मात्रा ६ माशे से एक तोला तक है।

---

# हरुच (हिलमोचिका)

*नामः—*

संस्कृत—हिलमोचिका, विषघ्नी, मत्स्याक्षी, त्रिवत् पर्णी इत्यादि। हिन्दी—हरुच, हिलमोचिका। बंगला—हिञ्चो, हिञ्जेशाक। उड़ीसा—हिरमचा। लेटिन—Enhydra Fluctuans ( एनीद्रा फ्लुक्टुअन्स )।

वर्णन—हिलमोचिका का क्षुप ब्राह्मी के समान होता है। यह प्रायः जल के निकट पैदा होती है इसके फूल छोटे-छोटे और नीले रंग के होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते किञ्चित कड़वे, शीतल, मृदु विरेचक तथा सूजन, कुष्ट, कफ, पित्त, त्वचा के रोग और खाँसी को मिटानेवाले होते हैं। शीतला की बीमारी में भी ये उपयोगी होते हैं।

बंगाल में इसके पत्तों का शाक बनाया जाता है। चर्म रोग और मज्जाततुओं के रोगों में इसका स्वरस एक तोले की मात्रा में दिया जाता है। यकृत की क्रिया को दुरुस्त करने के लिए इसके पत्तों की शाक चावल की पेज में उबाल कर उसमें सेंधा नमक और सरसों का तेल मिलाकर खिलाई जाती है, सुजाक में इसके स्वरस को दूध में मिला कर देते हैं। मस्तिष्क की गर्मी को कम करने के लिए इसके पत्तों को पीस कर मस्तक पर लेप करते हैं। चेचक की बीमारी में इसके स्वरस में मधु मिला कर पिलाया जाता है।

---

# हरवल (खाजगोली)

*नामः—*

हिन्दी—हरवल। मराठी—खाजगोली ची वेल। तामील—पुलिन रलाई, सुगमवेल। तेलगू—पुल्ला चेचाली। इंग्लिश—Hairy wild Vine ( हेरी वाइल्ड वाइन ) लेटिन—Vitis Setosa ( विटिस सेटोसा )।

वर्णन—यह एक जाति की बेल होती है। इसके पत्तों तथा डालियों पर चर्मदाहक बाल रहते हैं। इसका हर एक अङ्ग दाह जनक होता है। यह वनस्पति दक्षिण, कर्नाटक और पश्चिमी घाट में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसके पत्ते बाह्योपचार में त्वचा को उत्तेजित करने वाले होते हैं। इनका पुलटिस बना कर फोड़ों

को पकाने के लिए उन पर बाँधा जाता है। नारू के ऊपर इनको बाँधने से नारू का जखम पककर नारू बाहर निकल जाता है।

---

## हरेल चारा

*नाम.—*

नैपाल—हरेल चारा। वर्मा—थिंगवे। लेटिन—Jasminum Scandens (जेसमिनम स्कैण्डेन्स)।

वर्णन—यह मोगरा या जूही के वर्ग की अत्यन्त सुगन्धित और सफेद फूलोंवाली वनस्पति नैपाल, आसाम तथा बंगाल के पहाड़ों में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी जड़ दाद पर लगाने के काम में ली जाती है।

---

## हरफ़ारेवड़ी

*नामः—*

संस्कृत—लवली, सुगन्ध मूला, स्कन्धफला, कोमल वल्कला। हिन्दी—हरफ़ारेवडी, चालमेरी। बंगला—हरी फूल, नौरी, लोडा। गुजराती—खाटी आँवली। मराठी—रायआँवला। कोकण—राजनवल्ली, रोसनवल्ली। बम्बई—हर पारावरी, रायआवला। तामील—अरुनोल्ली। तेलगू—राचायुसिरिका। अंग्रेजी—The country Gosseberry (दी कण्ट्री गोसबेरी) लेटिन—Phyllanthus Distichus (फिलेन्थस डिस्टिचस) Cicca Disticha (सिक्का डिस्टीचा) उर्दू—हरफारोरी।

वर्णन—हरफारेवडी का वृक्ष बागों में लगाने लायक बहुत सुन्दर होता है। दक्षिणी भारत के बगीचों में यह बहुत लगाया जाता है। इसका वृक्ष छोटे कद का होता है। इसके पत्ते करौंदी के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फल गूलर के फलों की तरह शाखाओं के पिण्ड में से फूटते हैं। गरमी के प्रारम्भ में इसके लाल रंग के फूल आते हैं। उसके पश्चात् इसके खट्टे स्वाद वाले गिरदार फल लगते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हरफारेवडी कसैली, रुचिकारक, प्रिय, खट्टी, कड़वी, रूखी, विशद, स्वादिष्ठ, सुगन्धित, वातवर्द्धक, हलकी तथा कफ, पित्त, मूत्राश्मरी और बवासीर में लाभदायक होती है।

भाव प्रकाश के मतानुसार हरफारेवड़ी रुधिर विकार, बवासीर और कफ पित्त को नष्ट करनेवाली तथा भारी, विशद, रोचक, रूखी, स्वादिष्ट, कसैली और खट्टी होती है।

इसका फल खट्टा और सकोचक होता है। यह भूख को बढाता है, वायु नलियों के प्रदाह को कम करता है और इसके बीज आनुलोमिक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल अत्यन्त खट्टा, यकृत को शक्ति देनेवाला तथा प्यास, पित्त विकार, वमन और कब्जियत को दूर करने वाला होता है यह रक्त को शुद्ध करने वाला तथा रक्त को बढ़ाने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल संकोचक तथा इसकी जड और बीज विरेचक होते हैं। इसकी जड और इसके पत्ते विषनाशक माने जाते हैं।

---

# हड़ताल

*नामः—*

संस्कृत—हरितालक, हरिताल, छत्राग, काञ्चन रस इत्यादि। हिन्दी—हरताल, तबकिया हडताल। बङ्गला—हरिताल, हत्तेल। मराठी—हडताल। गुजराती—हडताल। लेटिन—Arsenii Trisulphidum ( आर्सेनि ट्रिसल्फाइडम )।

वर्णन—हडताल एक उपधातु होती है जो खदानों से निकलती है। यह दो प्रकार की होती है। ( १ ) पत्र हड़ताल, ( २ ) पिण्ड हडताल। पत्र हडताल या तबकिया हडताल सोने के समान रंगवाली होती है। इसमें अभ्रक के समान तबक या पत्र निकलते हैं। यह गुण और प्रभाव में श्रेष्ठ होती है दूसरी पिण्ड हडताल ढेले की तरह होती है यह औषधि प्रयोग के काम में निकृष्ट होती है।

तीसरी एक गौदन्ती हड़ताल का उल्लेख रसायन और निघण्टु ग्रन्थों में देखने में आता है। उसके लिए लिखा हुआ है कि जो गाय के दाँत के समान लम्बे चौड़े आकार में मिलती जुलती हो, सफेद वर्ण की हो, जिसमें नीलवर्ण या पीतवर्ण की रेखा हो तथा जो चिकनी और भारी हो वह गोदन्ती हडताल उत्तम होती है। मगर यह हडताल कैसी होती है इसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बाजार में गौदन्ती हड़ताल के नाम से जो वस्तु मिलती है। वह तो सम्भवतः यह नहीं है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से शुद्ध हड़ताल चरपरी, स्निग्ध, कसैली, गरम, विषनाशक तथा कण्डू, कुष्ठ, मुखरोग, रुधिरविकार, कफ, पित्त, व्रण और वात को दूर करती है।

शोधित हडताल कान्तिजनक, वीर्यवर्द्धक, कुष्ठादि रोग नाशक, कफरोग निवारक तथा मृत्यु और बुढापे को दूर करनेवाली होती है। आधी रत्ती से एक रत्ती तक हडताल भस्म छः गुनी शक्कर में मिलाकर सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातरोग तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, प्रमेह और बवासीर दूर होता है।

*अशुद्ध हडताल की प्रतिक्रिया*—अशुद्ध हडताल आयुनाशक, कफकारक, वातवर्द्धक, प्रमेहजनक, विस्फोटकारक, अङ्ग सकोचक और तापजनक होती है। अशुद्ध अथवा कुविधि से मारी हुई हडताल देह की सुन्दरता को नष्ट करनेवाली, घोर ताप को उत्पन्न करनेवाली, अङ्गों को सकुचित करनेवाली, पीडा को उत्पन्न करनेवाली, कफ वात को बढानेवाली और कुष्ठ को उत्पन्न करनेवाली होती है।

*हडताल को शुद्ध करने की विधि*—तबकिया हडताल को एक कपडे की पोटली में बाँधकर दौलायन्त्र की विधि से काजी, पेठे का ( सफेद कुष्माण्ड ) का रस, तिल का तैल और त्रिफले के काढे में एक एक पहर तक पका लेने से वह शुद्ध हो जाती है।

*दूसरी विधि*—एक सेर कली के बिना बुझाये चूने में चार सेर पानी डालकर दौलायन्त्र की विधि से हडताल की पोटली उसमें लटकाकर एक पहर तक मन्दाग्नि के द्वारा तीन बार स्वेदन करने से तबकिया हडताल शुद्ध हो जाती है।

*तीसरी विधि*—सफेद कुष्माण्ड अथवा पेठे का एक फल लेकर उसमें डिगरी लगाकर छेद करके पाव भर तबकिया हडताल उसके अन्दर भर देना चाहिए फिर उसी डिगरी से उसका छेद बन्द करके उस पेठे को एक लोहे की कडाही में इस प्रकार रखना चाहिए कि वह छेदवाला भाग ऊपर की तरफ रहे और उस कडाही को मध्यम आँच पर चढा दें जब पेठा जलते-जलते हडताल के समीप तक कडाही का पेंदा आ लगे तब कडाही को जमीन पर उतार लें। इस क्रिया से भी हडताल शुद्ध हो जाती है।

*हडताल को भस्म करने की विधि*—थूहर के दूध और आक के दूध में दो दो दिन तक हडताल को खरल करके उसकी पूडी के समान टिकिया बना लें अगर दोनों प्रकार के दूध न मिल सकें तो किसी ही एक प्रकार के दूध में भी घोट कर उसकी टिकिया बनाई जा सकती है। उस टिकिया एक महीने तक किसी बर्तन में रखकर जमीन में गाड दें। फिर उस टिकिया को खूब सुखाकर चूने से भरे हुए "खल्व सुधायन्त्र" में रखकर पाँच दिन की अग्नि देने से हडताल भी भस्म हो जाती है।

*खल्व सुधा यन्त्र*—पहले एक लोहे के खरल पर तीन कपरौटी कर लें फिर उसमें नीचे बिना बुझाया हुआ चूना रखकर उस चूने के ऊपर शुद्ध हडताल रखकर ऊपर फिर बिना बुझाया चूना रख दें। उसके पश्चात् उस खरल पर लोहे का ढक्कन लगाकर उस पर आधा मन वजन का पत्थर रख दें और फिर उसे भट्टी पर चढावें। इसे खल्व सुधा यन्त्र कहते हैं।

*हडताल भस्म की दूसरी विधि*—एक मिट्टी की हाण्डी में जौकुट किया हुआ नमक पाँच सेर भर दें और उस नमक के ऊपर एक सेर अपामार्ग की राख दबाकर भर दें उस राख पर एक तोला शुद्ध हडताल को घीगुवार के रस में घोटकर उसकी टिकडी बनाकर छाया में सुखा कर रख दें और उस टिकडी पर एक

सेर अपामार्ग की राख और दबा दें तथा उस राख पर फिर पाच सेर नमक भरकर दबा दें। इस मिट्टी की हाण्डी को चूल्हे पर चढ़ा कर हलकी आँच से गरम करना चाहिए। जब यह नमक इतना गरम हो जाय कि उस पर अनाज के दाने डालते ही सिक जॉय तब उस हाण्डी को उतार कर ठण्डी करके, हड़ताल की भस्म को निकाल लेना चाहिए।

यह हडताल भस्म श्वास, खाँसी, क्षय, पित्त, वातरक्त दद्रु, पामा, व्रण और कुष्ठ रोग में लाभ पहुँचाती है।

अनुपान—हड़ताल भस्म को सब प्रकार के रक्त विकारों में अम्बिया हलदी के साथ, अपस्मार रोग में बच्छनाग और जीरे के साथ, जलोदर रोग में समुद्र फल के साथ तथा भगन्दर रोग, फिरंगोपदश, विसर्प, मण्डल कुष्ठ, कण्डू, पामा और विस्फोटक में देवदाली के रस के साथ देना चाहिए।

मात्रा—हडताल भस्म की साधारण मात्रा १ रत्ती की है। इसके सेवन के समय अगर खारे, खट्टे और कडवे पदार्थ नहीं खाये जॉय तो विशेष लाभ करती है।

---

# हलदी

*नाम*—

सस्कृत—हरिद्रा, पीता, युवती, हेमरागिणी, काञ्चनी, मेहघ्नी, गौरी इत्यादि। हिन्दी—हल्दी। बङ्गला—हल्दी, पीतरास। गुजराती—हलदर। मराठी-हलद। पजाब—हलदर। अरबी—कुरकम। फारसी-दारजरदी। तामील-मजल। तैलगू—पम्पी। उर्दू—हल्दी। अग्रेजी-Turmeric (टर्मेरिक) लेटिन—Curcuma Longa (करक्यूमा लोंगा)

वर्णन—हल्दी के पौधे छोटे, कोमल और वर्षजीवी होते हैं। इसके पत्ते बहुत बड़े २ होते हैं। इस वृक्ष की जडों में जमीन के अन्दर हलदी की गठानें लगती है। ये गठानें पीले रग की होती हैं। हलदी मसाले के तौर पर सारे भारतवर्ष में उपयोग में ली जाती है।

*गुण दोष और प्रभाव*—

आयुर्वेदिक मत से हलदी चरपरी, कडवी, सौन्दर्यवर्द्धक, उष्ण, रूखी, शोधक और स्त्रियों के लिए भूषण है। यह कफ, वात, रुधिर दोष, कोढ, खुजली, प्रमेह, त्वचा के दोष, घाव, सूजन, पाण्डु रोग, कृमि, विष, पीनस, अरुचि, पित्त और अपचन को दूर करने वाली होती है।

यूनानी मत-यूनानी मत से हलदी की गठानें कडवी, शान्तिदायक, फोड़े को पकानेवाली और मूत्रल होती हैं। ये यकृत की विकृति तथा पीलिया रोग में लाभ पहुँचाती हैं।

डा० देसाई के मत से जिन रोगों में श्लेष्म त्वचा से कफ अधिक मात्रा में निकलने लगता है जैसे गले के द्वारा अधिक मात्रा में कफ का गिरना नाक से सेढा गिरना, तथा प्रमेह, प्रदर इत्यादि रोगों में हलदी अच्छा काम देती है। हलदी श्लेषमत्वचा में रूक्षता उत्पन्न करके कफ का पैदा होना कम कर देती है। सरदी के अन्दर जैसे वच फायदा पहुँचाती है वैसे ही हलदी भी पहुँचाती है। सरदी लग जाने पर हलदी की धूनी भी दी जाती है और हलदी को दूध में औटा कर गुड मिला कर पिलाई भी जाती है इसके लेने से नाक के द्वारा सरदी बहकर मस्तक का भार हलका हो जाता है।

सुजाक रोग में जब पेशाब गाढा, वेदनायुक्त, बार बार और थोडा २ होने लगता है तब हलदी और आँवले का काढा बहुत लाभ पहुँचाता है। इस काढे से दस्त साफ़ होता है, पेशाब की जलन कम होती है, पेशाब थोडा २ होना बन्द होकर साफ होने लग जाता है। प्रदर रोग में हल्दी को गूगल के साथ अथवा रसोत के साथ देते हैं।

आँखों के दूखने आने पर १। तोला हलदी को १० औंस पानी में औटा कर कपडे में छान कर आंखों में टपकाते हैं और उसमें कपडे को तर करके आखों पर रखते हैं। इससे आखों में ठण्डाई पैदा होती है, वेदना शान्त होती है और आखों से कीचड का बहना कम हो जाता है। नेत्राभिष्यन्द रोग में हलदी एक उत्तम औषधि है। कान के बहने की हालत में हलदी और फिटकरी को मिला कर कान में टपकाते हैं।

हल्दी के अन्दर वातनाशक धर्म भी किसी कदर रहता है, इसलिए सर्दी से होनेवाली अङ्गों की वेदना, दस्तों की वजह से होनेवाले जोडों के दर्द और मस्तकशूल में हलदी खाने और लगाने के काम में आती है। बवासीर के सूजे हुए मस्सों पर हल्दी घीगुवार के गूदा में मिलाकर लगाई जाती है। भूतोन्माद में इसकी धूनी दी जाती है।

चर्मरोगों में हलदी एक बहुत उपयोगी वस्तु है। इन रोगों में इसको आंवले का साथ देना विशेष उपयोगी होता है। हल्दी को मक्खन में मिला कर त्वचा पर लगाने से त्वचा मुलायम होती है और बहुत से चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। हलदी के उबटन से देह का सौंदर्य भी निखर जाता है इसलिए विवाह के समय हलदी का उबटन इस देश में शास्त्रसम्मत माना गया है। व्रणों के ऊपर हल्दी को पीस कर लगाने से व्रण का सकोचन होकर वह शीघ्र भर जाता हैं। इधर उधर से आकस्मिक गिर जाने से अथवा और किसी दूसरी घटना से शरीर को भीतरी चोट पहुँची हो, अथवा रक्त का जमाव हो गया हो तो हल्दी को दानेदार शक्कर के साथ देने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है और रक्त सचालन क्रिया दुरुस्त हो जाती है। हल्दी का लेप चोट और मोच के ऊपर करने से लाभ पहुँचाता है।

हलदी में दीपन और ग्राही धर्म भी रहता है इसलिए दस्त, अतिसार, संग्रहणी, इत्यादि रोगों में भी यह उपयोगी होती है। चक्कर आने की हालत में हलदी का लेप सिर पर करना चाहिए।

प्रसूतिकाल में तथा बच्चा जब तक छोटा रहे तब तक प्रसूता को हलदी देना उत्तम होता है क्योंकि इससे दूध की शुद्धि होती है और गर्भाशय को उत्तेजना मिलती है।

हलदी की गठानें बाह्य और अन्तरंग दोनों ही दृष्टियों से उत्तेजक धर्म रखती हैं। इनका लेप करने से ये त्वचा उत्तेजित कर वेदना को शान्त करती हैं और इनका भीतरी प्रयोग रक्त की विकृति को दूर करता है। इसका बाह्य प्रयोग चोट, मोच, जोंक का डङ्क इत्यादि पर किया जाता है। इसीलिए भारतवर्ष में हर एक लेप और पुलटिस में हलदी मिलाने का रिवाज है। इसका ताजा रस कृमिनाशक होता है। इसकी गठानों का काढ़ा जुकाम और ऐसे नेत्र शुक्ल रोग में जिसमें आंख से पीव निकलता हो उपयोगी होता है।

यूनानी हकीम इसको पीला रंग होने की वजह से यकृत के रोग और पीलिया में उपयोग में लेते हैं।

हलदी की गठान का काढा—ऐसे नेत्राभिष्यन्द रोग में जिसमें पीव बहता हो बहुत उपयोगी चीज है। इससे वेदना शीघ्र शान्त हो जाती है। जुकाम के अन्दर हलदी की गठानों को जलाकर उनका धुआँ नाक की राह ग्रहण करने से नाक खूब बहने लगता है और जुकाम का सब विकार नाक की राह निकल जाता है और मस्तिष्क हलका हो जाता है।

वेडन पावल के मतानुसार हलदी पार्यायिक ज्वर और जलोदर रोग में उपयोगी होती है। इसके अन्दर काफी तादाद में उड़नशील तेल और स्टार्च रहता है जो कि उत्तेजक, सुगन्धित और पौष्टिक होता है।

इसकी गठान को भूनकर फिर उसका चूर्ण करके ब्रोङ्काइटीज में देते हैं और इसका धुआँ हिस्टीरिया जनित मूर्च्छा को दूर करने के लिए दिया जाता है। हलदी का चूर्ण करके उसको चिलम में रखकर उसका धूम्रपान करने से बिच्छू के विष की वेदना दूर होती है।

हलदी और फिटकरी को १ और २० के परिमाण में मिलाकर नली के द्वारा कान में फूँकने से प्राचीन कर्णस्राव रोग आराम होता है।

हलदी के फूलों का लेप दाद और दूसरे चर्म रोगों में लाभ पहुँचाता है। सुजाक के इलाज में हलदी के फूल उपयोगी होते हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान में हलदी बहुत प्राचीन काल से उपयोग में ली जाती है। सभी प्रकार के प्रमेहों में विशेषकर कफ जन्य प्रमेहों में यह एक उत्तम वस्तु मानी जाती है। इसी से यहाँ के निघण्टुओं में इसका एक नाम "मेहघ्नी" भी रक्खा गया है। महर्षि सुश्रुत ने भी इसको प्रमेह के रोग में उपयोगी माना है। आजकल के देशी चिकित्सक भी हलदी के चूर्ण को आँवले के रस में मिलाकर प्रमेह के रोग में देते हैं। जिससे कितनी ही प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

एक तोला हलदी के चूर्ण को आठ तोला गौमूत्र के साथ पीने से खसरा तथा अण्डकोष के ऊपर की खुजली मिट जाती है। इसी चूर्ण को गुड के साथ खाकर ऊपर से गौमूत्र पीने से दाद और श्लीपद का रोग कुछ दिनों में अच्छा हो जाता है। जुकाम के प्रारम्भ में रात के समय नाक के द्वारा हलदी का धुँवा ग्रहण करके अगर कुछ समय तक पानी न पिया जाय तो चाहे जैसा कठिन जुकाम अच्छा हो जाता है।

*हलदी और अर्बुद रोग*—जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि अर्बुद अथवा रसोली का

हाथीसुरा। बम्बई—भुरुण्डी, सूर्य्य कमल। गुजराती—हाथी सुण्डा। मराठी—भुरूण्डी। तामील—तेलमनि। लेटिन—Heliotropium Indicum (हेलिओट्रोपियम इण्डिकम)।

वर्णन—यह एक प्रकार का वर्षजीवी क्षुप होता है। इसका पौधा हाथ डेढ हाथ ऊँचा होता है। यह सारा क्षुप एक प्रकार के रुएँ से आच्छादित रहता है। इसके डालियाँ बहुत लगती हैं। जो हाथ की उङ्गली के समान मोटी होती है। इसके पत्ते हृदयाकृति और लम्बे डखल वाले होते हैं। डालियों के सिरे पर सफेद फूलों के गुच्छे आते हैं। इस सारे पौधे में धतूरे के समान गन्ध आती है। इसका जायका कुछ कडवा होता है। इसके फूलों की मजरी बिलकुल हाथी की सूण्ड के समान होती है इसीसे इसे हस्तीशुण्डी कहते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कडवी, संकोचक और हठीले ज्वर को दूर करनेवाली होती है।

यह वनस्पति ग्राही, कडवी, वेदनानाशक, वृण शोधक और वृण रोपक होती है। व्रणशोथ, व्रण और जखमों पर इसके पत्तों को बाधने से लाभ होता है। त्रासदायक विद्रधि और नेत्राभिष्यन्द रोग में आखों की पलकें सूज जाने पर इसका स्वरस लगाया जाता है। व्रण और गले की गठानों पर इसका रस अरण्डी के तेल में मिलाकर लगाया जाता है। टान्सिल की सूजन में इसके काढे से कुल्ले किये जाते हैं और इसका काढ़ा पिलाया जाता है। ज्वर में इसके पत्ते लाभदायक होते है।

इसकी जडें बिच्छू और सर्प के विष पर लगाने के काम में ली जाती हैं। इसके पत्तों का रस अरण्डी के तेल में मिलाकर लगाने से बिच्छू के विष की वेदना कम हो जाती है। पागल कुत्ते के विष में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों की लुगदी से सिद्ध किया हुआ तेल गलित कुष्ठ में उपयोगी होता है।

इस वनस्पति के पत्ते संसार के बहुत से भागों में इनके घाव पूरक गुण के कारण और टूटी हड्डी को जोडने के गुण के कारण बहुत आदर की निगाह से देखे जाते हैं। ये पत्ते अर्बुद, विद्रधि और प्रदाह में लगाने के काम में लिये जाते हैं। इनके अन्दर स्निग्ध गुण विशेष तादाद में पाया जाता है। कुछ लोगों के मत से इस वनस्पति में मूत्र निस्सारक गुण भी रहता है।

पटना में इस वनस्पति के पत्ते दो माशे से लेकर नौ माशे तक की मात्रा में ज्वर को दूर करने के लिए उपयोग में लिये जाते हैं।

कम्बोडियों में इसके पत्तों का काढ़ा ज्वर को दूर करने के लिए और इसके फूल मासिक धर्म को नियमित करने के उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फूल छोटी मात्रा में मासिक धर्म को नियमित करते हैं और बडी मात्रा में गर्भस्रावक होते हैं। इसके पत्ते और जड़ों का लेप बना कर दाद और गठिया पर लगाने के काम में लिया जाता है।

गले के छालों और घावों को दूर करने के लिए यह एक उत्तम औषधि है। इसके पत्ते सुजाक और अग्निविसर्प रोग की चिकित्सा में काम में लिये जाते हैं।

डायमाक के मतानुसार यह वनस्पति चेहरे की फुन्सियों पर लगाने के काम में ली जाती है। प्रदाह-युक्त चक्षुवेदना में भी यह उपयोगी है। इस औषधि की गले के रोगों में बहुत प्रशंसा है। कण्ठनाली के प्रदाह और टॉन्सिल्स की सूजन में यह बहुत उपयोगी वस्तु है। इन रोगों में इसके पत्तों और फूलों के काढे से कुल्ले किये जाते हैं और एक एक घण्टे के अन्तर से इसके पत्तों और फूलों का काढा एक वाईन् ग्लास की मात्रा में पिलाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति दुष्ट फोड़ों और जहरीले कीड़ों तथा सर्पविष के उपचार में काम में ली जाती है। इसमें टैनिन, आर्गनिक एसिड और कुछ उपक्षार रहते हैं।

मात्रा—इसके पत्तों की मात्रा आधे ड्राम से तीन ड्रामतक होती है।

---

# हस्तिकन्द

*नाम.—*

संस्कृत—हस्तिकन्द, हस्तीपत्र, कुष्ठहन्ता, नागकन्द, गजकन्द इत्यादि।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हस्तिकन्द चरपरा, गरम, कफवातनाशक तथा त्वचा के विकार, महाकुष्ठ, विष और विसर्प रोग को नष्ट करता है।

हस्तिकन्द गरम, चरपरा, मधुर, भारी तथा सूजन, कफ, रुधिरविकार, वात, कोढ, विसर्प और त्वचा के रोगों को दूर करता है।

---

# हंसपदी

*नाम·—*

संस्कृत—हंसपादी, कीरमाता, त्रिपादी, मधुस्रवा, गोधापदी इत्यादि। हिन्दी–हंसपदी, हंसपगी, काली झाट, काली झार। गुजराती–हंसपादी, मुबारक, हंसराज। मराठी–हंसराज, राजहंस, घोडखुरी। बंगला-कालीझाट, गोयालेलता। काठियावाड—कालो हंसराज। अङ्गरेजी–The Maidens Hair Fern ( दी मेडन्स हेअर फर्न )। लेटिन–Adiantam Lunulatum ( एडिएण्टम् ल्युनुलेटम )।

वर्णन—हसपदी का क्षुप एक फीट से लेकर दो फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बहुत छोटे २ और पक्षियों के पजे की तरह होते हैं। इनके डखल काले, चिकने और चमकदार बालों के समान पतले होते हैं। यह वनस्पति जलाशयों के किनारों पर शीतल स्थानों में बहुत होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हसपदी भारी शीतल, गरम, रसायन तथा रुधिरविकार, विष, व्रण, विसर्प, दाह, अतिसार, भूतबाधा, अग्निरोहिणी रोग, अपस्मार और भ्रम को हरनेवाली होती है।

इसकी जड मूत्रकृच्छ रोग तथा श्लीपद की वजह से होनेवाले ज्वर में उपयोगी होती है। इसके पत्ते गुजरात में रतवा नामक चर्मरोग पर और फोड़े-फुन्सियों पर पीसकर लगाये जाते हैं। इसके सूखे पत्तों का शरबत बनाकर खाँसी, रक्तविकार इत्यादि रोगों में पिलाया जाता है।

डा० देसाई के मत से हसपदी कड़वी, कुछ सकोचक, खाँसी को दूर करनेवाली और कफनाशक होती है। इसमें कुछ मूत्रल धर्म भी रहता है। बच्चों के लिए यह बहुत उपयोगी वस्तु है। इसके पचाग का शरबत बच्चों के रोगों में बहुत दिया जाता है। बच्चों की खाँसी में हसपदी या हसपदी का शरबत दिया जाता है। मात्रा अधिक होने पर हसपदी वामक धर्म दिखलाती है फिर भी कफ को वह वमन के द्वारा निकाल देती है जिससे खाँसी में राहत पहुँचती है।

---

## हंसराज

*नामः—*

हिन्दी–हसराज, मुबारक, पुरुष। काश्मीर–दमतुली। अरबी–शेरुलजिन। फारसी–सिरसिया पेशानी। लेटिन–Adiantnm Capillas (एडेन्टियम केपेलिस)।

वर्णन—यह भी उपरोक्त हंसपदी के वर्ग की ही वनस्पति होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह वनस्पति ज्वर, जुकाम और खाँसी में लाभदायक होती है। पजाब में इसके पत्तों को काली मिरच के साथ मिलाकर ज्वर को दूर करने के लिए देते हैं। जुकाम के अन्दर इसके पत्तों को शहद में मिलाकर देने से लाभ होता है।

मैक्सिको इसके पौधे की चाय बनाकर कॉलिक उदरशूल में देते हैं। इस चाय के सेवन से स्त्रियों को होनेवाली मासिक धर्म की रुकावट भी मिट जाती है।

यह वनस्पति लुआबदार, कफनिस्सारक और छाती के रोगों में हितकारक होती है। कफ रोगों का

जल्दी निकल जाता है। पेशाब और दस्त साफ़ होता है और थकावट नहीं आती। श्वास नलिका की नवीन सूजन में भी इस औषधि को दिया जा सकता है। इसको बड़ी मात्रा में देने से जोरदार विरेचन होता है इसलिए जलोदर के अन्दर भी इस औषधि का उपयोग किया जाता है मगर विरेचन के लिए इस वनस्पति को उपयोग में लेना ठीक नहीं है क्योंकि इसके विरेचन से आँतों में दाह पैदा होता है। इसके बीजों का तेल जखमोंपर और अग्नि से जले हुए स्थानपर लगाया जाता है।

इस वृक्ष की छाल, कच्चा फल और पत्ते चरपरे, कडवे, और विरेचक होते हैं। इनमें कृमिनाशक तत्व भी रहते हैं। इसके बीज कफ़ रोगोंमें दिये जाते हैं कॉलिक शूल में भी ये लाभदायक माने जाते हैं।

*उपयोगः—*

*पेट के कृमि*—इसके वृक्ष की छाल के चूर्ण की फ़क्की देनेमे पेट के कृमि मरते हैं।

*सूखी खांसी*—इसके बीज की मगज को एक रत्ती से पन्द्रह रत्ती तक की मात्रा में देने से सूखी खांसी मिटती है।

*उदर शूल*—इसके आधे फल की मगज देने से उदर शूल मिटता है।

*मोतियाबिन्द*—हिङ्गोट की मगज दो भाग और अफ़ीम एक भाग इन दोनों को मिला कर अञ्जन करने से आँखके मोतियाबिन्द में लाभ होता है। हिङ्गोट की मगज को पानी में घिस कर अञ्जन करने से आँखकी ज्योति बढती है।

*रुधिर विकार*—हिङ्गोट के वृक्ष की छाल का चूर्ण ६ माशे से एक तोले तक की मात्रा में पन्द्रह दिन तक रोज पानी के साथ लेने से कुष्ठ और रुधिर विकार में लाभ होता है। मगर इस औषधि को लेते समय, तेल, खटाई, नमक और वात वर्द्धक पदार्थों का सेवन बन्द कर देना चाहिए।

हिंङ्गोट की मगज का तेल स्निग्ध, शीतल और मीठा होता है। यह कान्ति, बल, धातु, केश, कफ़ और नेत्रों की ज्योति को बढाता तथा पित्त को नष्ट करता है।

मात्रा—इसके फल की मगज की मात्रा कफ़ को नष्ट करने के लिए एक रत्ती से पाँच रत्ती तक है। १० रत्ती से ३० रत्ती की मात्रा में यह स्नसन होती है।

---

# हिरनपदी

*नामः—*

संस्कृत—भद्र बला, प्रसारणी, हिन्दी—हिरन पदी, प्रसारणी, बेरी। गुजराती—नेरी, नेरीवेल, वेलडी,

कठियावाड—हरनपगो, वेलडी, मराठी—हरनपग चाँदवेल। बङ्गला-गन्धभादली। लैटिन—Convolvulus Arvensis ( कनवोल वालस अरवेन्सिस )।

वर्णन-यह एक लता होती है। इसकी वेल पतली होती है। जाडे के दिनों में यह पैदा होती है। इसमें दूध के समान रस भरा रहता है। इसके पत्ते लम्बे और हिरन के खुरके आकार के होते हैं। इसके फूल सफेद, गुलाबी, या बैंगनी छायावाले होते हैं। इसका फल गोलाई लिये हुए, नोकदार और चार बीजवाला होता है। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसकी जड विरेचक होती है। इसके पत्तोंकी तरकारी बनाई जाती है और यह पौष्टिक माने जाते हैं। इसके पत्तोंको पीस कर फोडे फुन्सियो पर बाँधते हैं। पजाब और सिन्ध में विरेचन के लिए अंग्रेजी दवा जेलपके बदले में इसकी जड का उपयोग किया जाता है।

---

# हिरु सियाह

*नामः—*

हिन्दी—हीरू सियाह, महानी। पजाब-चतरीवाल, दूदल, कुल्फाङ्गोडक। अंग्रेजी—Cat's milk ( केट्स मिल्क ) Churn staff ( चूर्न स्टॉफ ) लेटिन-Euphorbia Helioseopia ( इफोर्विया होलिओसेपिया )।

वर्णन—यह थूहर के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके सब अङ्गों में दूधिया रस भरा रहता है। यह वनस्पति पंजाब, पश्चिमी हिमालय और नीलगिरि में पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यह वनस्पति मूत्रविरेचक होती है। इसका रस त्वचा पर होनेवाली मसों ( warts ) को दूर करने के लिए लगाया जाता है। इसका दूधिया रस फफोलों ( Eruption ) पर लगाने के काम में लिया जाता है और इसके बीज भुनी हुई काली मिरचों के साथ हैजे की बीमारी में दिये जाते हैं।

इसका रस एक लेप की तरह सधिवात और स्नायुशूल पर लेप करने के काम में लिया जाता है और इसकी जड एक कृमिनाशक वस्तु की तरह दी जाती है।

---

# हींग

*नामः—*

संस्कृत—हिंगु, सहस्रवेधी, उग्रगन्ध, शूलनाशक, जन्तुनाशक। हिन्दी—हींग। गुजराती—हींग। बङ्गाल—हींग। मराठी–हिंग। कश्मीर–अंजुदान। फारसी—अगुझा, अङ्गादाना, अगुझे। उर्दू—अङ्गादाना, हींग। तामील, पेरूगायम। अरबी—हिल्तीत। अङ्गरेजी—Asafoetida (आसाफोटिडा) लेटिन—Ferulo Narthex ( फेरुलानार्देक्स ) Narthex Asafoetida ( नार्देक्स आसाफोटिडा )।

वर्णन—हींग एक प्रकार के वृक्ष का दूध होता है। यह दूध जमकर गोंद की शकल में हो जाता है। इसके वृक्ष ईरान में बहुत होते हैं और यह ईरान से ही भारत में बिकने को आती है। जो हींग कुछ कालापन लिये भूरे रङ्गकी, उग्र गन्ध युक्त, अत्यन्त तीक्ष्ण स्वादवाली और त्वचा पर लगाने से जलन उत्पन्न करनेवाली होती है वही उत्तम होती है। उसे हीरा हींग कहते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हींग पित्तजनक, गरम, हृदय को हितकारी, कड़वी, सारक, चरपरी, हलकी, तीक्ष्ण, रुचिकारक, पाचक, अग्निदीपक, स्निग्ध, मलस्तम्भक, तथा श्वास, खांसी, कफ, आनाह, आफरा, गुल्म, शूल, हृदय रोग, बादी, अजीर्ण, कृमि और उदर रोग को नष्ट करती है।

यूनानी मत–यूनानी मत से हींग के वृक्ष की डालिया चरपरी, मसाले के काम में आनेवाली, मस्तिष्क तथा यकृत को शक्ति देनेवाली, ऋतुश्रावनियामक, सूजन को नष्ट करनेवाली और पक्षाघात रोग में लाभदायक होती है। इसका गोंद अथवा हींग बहुत तीक्ष्ण स्वादवाली और उग्र गन्धवाली होती है। यह कृमिनाशक, ऋतुश्रावनियामक, बलवर्धक और अर्द्धाङ्ग वायु, सिर के चक्कर, बहरापन, दमा, बच्चों का श्वास कष्ट, सधिवात, नेत्ररोग, सूखी खाँसी, गले के रोग तथा तिल्ली और यकृत के रोगों को दूर करनेवाली होती है। यह स्मरण शक्ति को बढ़ाती है।

डा० देसाई के मत से हींग दीपन, पाचन, आमाशय और आंतों के लिए उत्तेजक, वायुनाशक, आनुलोमिक, कृमिघ्न, भेदक, कफनाशक, कफ की दुर्गन्ध को दूर करनेवाली, मज्जातन्तुओं के लिए तथा गर्भाशय के लिए जोरदार उत्तेजक, सकोच विकास प्रतिबन्धक और विषम ज्वर को नष्ट करनेवाली होती है। इसके अन्दर रहनेवाला उड़नशील तेल, श्वासनलिका, त्वचा और मूत्रपिण्ड के द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिस मार्ग से यह बाहर निकलता है उस मार्ग को उत्तेजना देता है। इसका कफनिस्सारक गुण प्याज के समान होता है। इसको लेने से श्वासनलिका में जमा हुआ कफ पतला होता है, उसकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और उसमें रहनेवाले रोगजन्तुओं का नाश होता है। श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान की क्रिया कुछ धीमी हो जाती है जिससे बिना कारण आनेवाली खांसी कम हो जाती है। ज्ञानतन्तु

में हींग का प्रयोग करने से यह अपना आश्चर्य जनक प्रभाव दिखलाती है। बच्चों के ब्रोंकाइटीज में भी इसका उत्तम प्रभाव होता है।

ग्लोबस हिस्टीरिया में–जिसमें कि पेट की तरफ से एक गोला सा उठकर छाती की तरफ बढता है— हींग को देने से बहुत लाभ होता है। दाद के ऊपर इसका लेप करने से दाद अच्छा हो जाता है। सधिवात में इसके वृक्ष के पत्तों को पिलाने से लाभ होता है।

रावर्टस के मत से सीलोन में नारियल के दूध में हींग को उबाल कर साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं और इसको पानी में घोल कर आधे चाय के चम्मच की मात्रा में नाक में टपकाते हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार हींग दूसरी औषधियों के साथ साँप और बिच्छू के विष में उपयोगी होती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है। बिच्छू के विष मे भी यह बेकार है।

*हींग को शुद्ध करने की विधि*—आयुर्वेद में हींग को भी शुद्ध करके उपयोग में लेने का विधान है। इसको शुद्ध करने की विधि इस प्रकार है:—लोहे के पात्र में घी के अन्दर हींग को डालकर आग पर रख दें, जब कुछ लाल हो जाय तब उतार कर काम में लें।

*नावटें—*

*हींग कर्पूरवटी*—हींग १ तोला और कपूर १ तोला इन दोनों चीजों को शहद में घोटकर रत्ती-रत्ती भर की गोलियाँ बनालें। यह हींग कर्पूरवटी अनेक रोगों पर काम आती है।

*हिंगाष्टक चूर्ण*—सोंठ, मिर्च, पींपर, जीरा, स्याहजीरा, अजमोद, सेंधानमक, कालानमक ये आठों चीजें एक २ तोला और हींग तीन माशा इन सब चीजों का चूर्ण करलें। इस चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में लेने से सब प्रकार के उदर रोग मिटते हैं।

मात्रा–हींग की मात्रा दो रत्ती से ६ रत्ती तक होती है।

---

# हींगड़ा

*नाम:—*

हिन्दी—हींगडा। इरान–अगुझेह इलारि। लेटिन–Ferula Foetida (फेरुला फोटिडा)।

वर्णन–हींगड़ा भी हींग के ही वर्ग के एक वृक्ष का निर्यास होता है। इसमें भी हींग के समान गन्ध आती है। यह भी ईरान से यहा आता है मगर यह हींग की अपेक्षा बहुत हलके दर्जे का होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

मसाले में बहुत से जैनी लोग हींग की जगह हींगड़े का प्रयोग करते हैं मगर औषधि गुण धर्म की दृष्टि से हींग की अपेक्षा इसका बहुत कम महत्व है।

---

# हिंगुपत्री

*नामः—*

संस्कृत–हिंगुपत्री, कबरी, बाष्पका, दारु पत्रिका इत्यादि।

वर्णन–हिंगुपत्री हींग के वृक्ष के पत्तों को कहते है, ऐसा कई लोगों का मत है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हिंगुपत्री चरपरी, तीक्ष्ण, कड़वी, गरम, पाचक, रुचिकारक, पथ्य, दीपन, हृदय को हितकारी, सुगन्धित, कसैली तथा कफ, वात, आमदोष, वस्ति की पीड़ा, कब्जियत, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, मेद, अपचन और विष को नष्ट करती है।

---

# हलकुसा

*नाम—*

संस्कृत–द्रोण पुष्पी, कुम्भी, रुद्रपुष्पा। हिन्दी–हलकुसा, गुमा। बंगला—हलकुसा। मराठी–गूमा। गुजराती—झीना पानना कुशो। उर्दू–गुमा। लेटिन–Leucas Linifolia (ल्यूकास लिनिफोलिया)।

वर्णन–यह द्रोणपुष्पी या गूमा के वर्ग की एक वनस्पति होती है। अन्तर इतना ही होता है कि इसके पत्ते द्रोणपुष्पी के पत्तों से पतले होते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

यूनानी मत से इसके पत्ते बदजायका, कफ निस्सारक, कृमि नाशक, कामोद्दीपक, शान्तिदायक, मृदु विरेचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक तथा बवासीर और आँखों के व्रणों में लाभदायक होते हैं।

मध्य भारत के लोगों का विश्वास है कि इसके पत्तों को भूँजकर उनमें नमक मिलाकर खिलाने से वे ज्वर को दूर करने में मदद करते हैं।

लखीमपुर आसाम में इसके पत्ते भूख बढ़ानेवाले माने जाते हैं। इसके पत्तों को केले के पत्तों में लपेट

कर गरम करते हैं और फिर रोगी को देते हैं। इसका पहला असर यह होता है कि रोगी की रही सही भूख भी नष्ट हो जाती है मगर दूसरे दिन उसकी भूख एकदम बढ जाती है और वह खाने के लिए व्याकुल हो जाता है।

---

## हीराबोल

*नामः—*

संस्कृत—बोल, गन्धरस, पिण्ड, रसगन्ध इत्यादि। हिन्दी—बोल, बीजाबोल, हीराबोल। बङ्गला—गन्धरस, बोल, हीराबोल। बम्बई—करम, बन्दर करम। मराठी—हीराबोल। गुजराती—हीराबोल। फारसी—मुर। अरबी—मुरसाफ। इंग्लिश—Myrha (मायरा)। लेटिन—Balsamodendron Myrrha (बालसमोडेण्ड्रोन मायरा)।

वर्णन—यह एक वृक्ष का गोंद होता है इसका रग ललाई लिये हुए पीले रग का और तेलिया होता है। यह चीठा, सुगन्धित और कुछ कडवा होता है। बम्बई में इसकी उत्तम जाति को करम और हलकी जाति को म्हैसा बोल कहते हैं। इस हीराबोल में भी दूसरी जाति के गोंद की मिलावट की जाती है। असली बोल को पहचानने के लिए उसको तेजाब में डालने से बैंगनी और किरमिची रग पैदा होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से बोल चरपरा, कड़वा, कसैला, गरम, पाचक, मेधाजनक, अग्निदीपक, गर्भाशय शोधक, और सुगन्धित होता है तथा रुधिरदोष, कफ, पित्त, त्रिदोष, प्रदर, पथरी, प्रमेह, योनिशूल, ज्वर, कुष्ठ, अपस्मार, रक्तातिसार, पसीना, ग्रहबाधा और पुरुषत्व का नाश करता है।

हीराबोल वातनाशक, उत्तेजक, वृणशोधक, वृणरोपक, श्लेष्म त्वचा के लिए उत्तेजक, सग्राहक, कफः निस्सारक, रक्त में श्वेतकणों को बढानेवाला, दीपन, कोष्ठ वायु को शमन करनेवाला, पसीना लानेवाला, मूत्रल और आर्त्तव प्रवर्त्तक होता है। इसकी मासिक धर्म को जारी करने की क्रिया प्रत्यक्ष और जोरदार नहीं होती है। इसका लेप उत्तेजक और सौम्य होता है, इसलिए वृणों के ऊपर इसका लेप किया जाता है। इसको मुँह में रखने से भी यही परिणाम होता है इसलिए मुखपाक, गले की शिथिलता, मसूड़े की सूजन और जीभ पर चट्टे तथा चीरे पडने की हालत में इसको मुँह में रखने से अथवा इसके अर्क से कुल्ले करने से बहुत लाभ होता है, रोहिणी रोग अथवा डिपथीरिया में भी इसका अर्क बहुत लाभ पहुँचाता है। हीराबोल दन्तमजन के उपयोग में भी बहुत आता है।

हीराबोल दीपन और वायुनाशक होता है। मुँह से लेकर गुदा पर्यन्त इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। इसलिए कुपचन, कब्जियत और पाण्डुरोग में इसका काफी उपयोग होता है।

हीराबोल रक्त में मिलकर रक्त के सफेद कणों को बढ़ाता है। इसलिए स्त्रियों के पाण्डुरोग में यह दिया जाता है। यह शरीर के अन्दर जाकर मूत्रेन्द्रिय, श्वासमार्ग, फुफ्फुस और श्लेष्म त्वचा के द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिन २ मार्गों से यह बाहर निकलता है उन मार्गों की विनिमय क्रिया को सुधरता है और उनको उत्तेजना देता है। त्वचा के रास्ते से बाहर निकलते समय यह पसीना लाता है मूत्रेन्द्रिय से बाहर निकलते समय यह मूत्र की तादाद को बढ़ाता है, फुफ्फुस और श्वासमार्ग से बाहर निकलते समय यह कफ को पतला करता है और उसकी दुर्गन्ध को नष्ट करता है। इससे श्लेष्म त्वचा की कमजोरी दूर होती है, कफ का निस्सारण होता है और कफ में रहनेवाले जन्तुओं का नाश होता है इसलिए पुराने कफ रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। तरुण मनुष्यों की खाँसी में यह बहुत लाभदायक होता है। बच्चों की माता को होनेवाले दमे में भी यह बहुत उपयोगी होता है।

हीराबोल गर्भाशय का संकोचन करनेवाला, उत्तेजक और आर्तव प्रवर्तक होता है। यह एलुवा और लोह भस्म के साथ अनार्तव रोग में बहुत दिया जाता है। कुमारी लड़कियों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी पड़ता है। गर्भाशय की शिथिलता जीर्ण बस्तिशोथ और श्वेतप्रदर में भी इससे लाभ होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

हीराबोल में ६० प्रतिशत गोंद, २ प्रतिशत उड़नशील तेल और ३५ प्रतिशत राल रहती है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा ५ से १० रत्ती तक की है। इसे चूर्ण के रूप में अथवा गोली के रूप में देना चाहिए।

---

# हीरादखन

नाम—

हिन्दी—हीरादखन, खूनखराबा। अरबी—दम-उल-अखवेन। सिन्ध—दरख्तानुन्नी। फारसी—खूनसियावशान। लेटिन—Calamus Draco ( केलेमस ड्रेको )।

वर्णन—यह एक प्रकार का लाल रंग का गोंद होता है। यह गोंद किस वृक्ष का होता है इस सम्बन्ध में यूनानी हकीमों के अन्दर बड़ा मतभेद है, कोई कोई इसे 'पतंग' वृक्ष का गोंद कहते हैं। मगर दूसरे हकीम इसको गलत मानते हैं। कुछ दाना हकीमों का कहना है कि यह ऐसे वृक्ष का गोंद है जो बड़ा होता है, जिसकी शाखाएँ टेढ़ी मेढ़ी और लम्बी टूटनेवाली होती हैं। छाल पतली होती है, पत्ते गोल, कई किनारों के और पतले होते हैं, फूल पीले और बीज काले होते हैं। इसके पिण्ड में चाकू मारने से लाल रंग का तरल पदार्थ निकलता है जो जमकर गोंद की शकल में हो जाता है। यह गोंद लाल रंग का साफ चमकदार और तेज होता है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

हीरादखन में स्तम्भक गुण महत्त्वपूर्ण होता है इसलिए यह अतिसार और आमाशय के पुराने रोगो में दिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। किसी किसीके मत से दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होता है। इसको पीने से भीतर से होनेवाला रक्तश्राव बन्द होता है। तलवार के जखम को यह भरता है, अतिसार को बन्द करता है, आतों की मरोड में मुफीद है, आँखों की ज्योति को बढाता है और मेदे को ताकत देता है। सग्रहणी में भी यह लाभदायक है। इसका मजन दाँत और मसूडों को शक्ति देता है। इसको बारीक पीसकर जखम पर भुरभुराने से जखम से बहता खून बन्द हो जाता है और जखम भर जाता है। इसके लगाने से आँख की सर्दी मिट जाती है।

*मुजिर*--इसकी अधिक मात्रा गुर्दे, फेफडे और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है।

*दर्पनाशक*---कतीरा। मात्रा–१ माशे से ४ माशे तक।

---

# हेरम्ब

*नामः—*

सस्कृत–हेरम्ब, खरपत्र, कटकी, दतधावन। हिन्दी—हेरम्ब, वज्रदन्ती। मराठी–दातुणी, हेरम्ब वृक्ष। गुजराती–वज्रदन्ती। लेटिन–Epicarpus Orientalis ( एपिकार्पस ओरिएण्टेलिस )।

वर्णन—हेरम्ब का बडा वृक्ष होता है इसके पत्ते वेर के पत्ते के समान होते हैं। इसकी लकडी दतून करने के काम में आती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हेरम्ब कफ और वात को नष्ट करनेवाला होता है। इसकी जड वमन कारक होती है। इसकी लकडी का दतून दाँतों को मजबूत करता है।

---

# हुलहुल

सस्कृत–आदित्यभक्ता, ब्रह्म सुवर्चला, कर्णस्फोटा, तिलपर्णी, सत्यनाम्नी, सुरसम्भवा, सूर्य्यलता, इत्यादि, हिन्दी–हुलहुल, कनफटिया। बगला–हुरहुरिया। बम्बई—हुरहुरिया, कनफुटी, पिवला तिलवन। मराठी–हुरहुर। गुजराती–पीली तलवणी, कागडियु, गुडिया करसण, बोरो। अरबी–बटा कलान। उर्दू–हुलहुल। पजाब–हुलहुल, बुगरा। लेटिन—Cleome Viscosa ( क्लिओम विस्कोसा )।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। यह पौधा डेढ फुट से ढाई फुट तक ऊँचा होता है। यह पौधा नीचे से एक डण्डी में सीधा बढ कर ऊपर झूमर के समान अनेक शाखाओं युक्त हो जाता है। इस सारे पौधे पर सफेद रङ्ग का चिकना रुँआ होता है। इसके पत्तों में एक प्रकार की हींग के समान उग्र और असह्य गन्ध आती है। इस पौधे के नीचे के भाग में पञ्चपर्णी और ऊपर के भाग में तिपानी पत्ते आते हैं। इसके फूल पीले रग के होते हैं। इसकी फलिया आधे से लेकर साढे तीन इञ्च तक लम्बी होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हुलहुल खारी, कडवी, शीतल, अग्निवर्द्धक, मूत्रल, मृदुविरेचक, कृमिनाशक, कफ को दूर करनेवाली, पित्त को बढानेवाली और रूक्ष होती है। यह अर्बुद और सूजन को घटाती है। चर्मरोग, खुजली, व्रण, कुष्ठ, मलेरिया ज्वर, अपचन की वजह से होनेवाले ज्वर, रक्तरोग और पेशाब सम्बन्धी रोगों में यह उपयोगी होती है। यह खून को बढाती है तथा कर्णरोग, और कफ रोगों को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौधा उग्र और असह्य गन्धवाला होता है। इसके पत्ते पाचन क्रिया को दुरुस्त करनेवाले और आँतों की खराबी को मिटानेवाले होते हैं। इनका रस कर्णशूल, मलेरिया ज्वर, बवासीर और कटिवात में लाभ पहुँचाता है तथा त्वचा पर लगाने से त्वचा को उत्तेजित करता है। इसके बीज कृमिनाशक और विरेचक होते हैं।

हुलहुल में स्वेदजनक, उत्तेजक, कोष्ठवायु को दूर करनेवाला और कृमिनाशक इतने धर्म रहते हैं। इसके बीजों और पत्तों की क्रिया राई के समान होती हैं। इसके पत्ते सफेद तिलवन के पत्तों की अपेक्षा स्पष्ट रूप से अधिक दाहजनक होते हैं। त्वचा पर इनका लेप करने से त्वचा फौरन लाल हो जाती है और वहाँ छाला उठ जाता है। इसलिए छाला उठाने के लिए और त्वचा को लाल करने के लिए इसके पत्ते अथवा पचाङ्ग को पीस कर लगाया जाता है। अन्तर्शोथ को कम करने के लिए इसके पत्तों का लेप राई के लेप की अपेक्षा विशेष उपयोगी होता है। इसके पत्तों के रस को तेल में मिलाकर कान में टपकाने से बहिरापन और पूतिव्रण में लाभ होता है। ज्वर, दस्त आम और सिर के दर्द में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है।

*प्लेग की बीमारी और हुलहुल*—जगलनी जडी बूटी के लेखक लिखते हैं कि यह वनस्पति प्लेग की बीमारी के समान भयकर बीमारी में अकसीर साबित हुई है। इस सारे पौधे के पचांग को सिलपर महीन पीस कर एक एक रुपये के आकार की दो टिकडिया बना लेना चाहिए। फिर जिस बाजू में प्लेग की गठान निकली हो उस बाजू की धोरी नाड़ी या व्हेन नस पर एक टिकडी और उसकी दूसरी बाजू दूसरी टिकडी रख कर उन पर साफ कपडे का पट्टा खींच कर बाध देना चाहिए। दो तीन घण्टे के पश्चात् इस पट्टे को खोलने से उस स्थान पर एक इञ्च के आकार का फोडा निकल आता है उस फोडे को सूई अथवा किसी दूसरे साफ औजार से फोड देना चाहिये। जिससे सब जहरी पानी निकल जावेगा। उसके पश्चात्

उस पर घी या कोई ठण्डा मलहम लगा देना चाहिये। इस फोडे के फूटने पर प्लेग की गाँठ बैठ जाती है और सौ में से पिचानवे मनुष्य काल के चगुल से बच जाते हैं।

इकान्तरा, तिजारी, चौथिया वगैरह मलेरिया ज्वरों में भी इसके पत्तों को पीस कर उनकी लुगदी बना कर दाहिने हाथ की कोनी के पिछले भाग में रखकर उस पर एक मिट्टी की टीकरी रख कर पट्टा चढा देना चाहिए इसको चार पाँच घण्टे में छोडने पर फोला उठ आवेगा उस फोले को फोड कर उसका पानी निकाल देने पर बुखार का आना रुक जाता है।

इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से कान का शूल बन्द हो जाता है। इसके बीज कृमिनाशक और पेट का आफरा दूर करनेवाले होते हैं। ये ज्वर और अतिसार रोग में दिये जाते हैं।

इण्डोचायना में इसकी जड उत्तेजक और रक्तातिसार नाशक मानी जाती है। इसके सारे पौधे को कुचल कर उसका लेप त्वचा पर फोडा उठाने के लिए किया जाता है।

लारियूनियन में यह वनस्पति सकोचक और आक्षेप निवारक मानी जाती है।

सीलोन में इसकी जड और इसके बीज हृदय को उत्तेजना देनेवाले माने जाते है तथा सर्पविष की चिकित्सा में इनको पिलाया जाता है।

*उपयोग—*

*वाइठे*—इसके पत्तों का क्वाथ छः तोले की मात्रा में दिन में दो बार देने से बाइठे मिटते हैं।

*पानीझरा*—इसके पत्तों का काढा छः तोले की मात्रा में दिन में दो बार पिलाने से पानीझरा या पैराटाइफाइड ज्वर छूटता है।

*आंतों के कीडे*—इसके बीजों के चूर्ण में शक्कर मिला कर खिलाने से आंतों के कीड़े मर जाते हैं।

*कान की सूजन*—कान के भीतर की सूजन और पीडा मिटाने के लिए इसके पत्तों को कुचल कर, बिना पानी डाले हुए, उनका स्वरस निकाल कर टपकाना चाहिये।

*फोडे*—फोडों के ऊपर इसके पत्तों को सिरका या गर्म जल या नीम्बू के रस में पीस कर लगाने से फोडों की सूजन बिखर जाती है।

*हलका ज्वर*-इसकी जड का क्वाथ पिलाने से मन्द ज्वर छूट जाता है।

*श्वास नलिका के रोग*-इसके पत्तों का स्वरस पिलाने से श्वास नलिका के रोग मिटते हैं।

*उपदंश*-हुलहुल के पत्तों को ठण्डाई की तरह घोट छान कर पीने से और उनके बचे हुए बुगदर को बाँधने से उपदंश में लाभ होता है।

*शीत ज्वर*—हुलहुल के पत्तों और काली मिरच को बराबर लेकर पीस कर काली मिरच के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिए। इन गोलियों में से एक २ गोली तीन दिन तक देने से शीत ज्वर छूट जाता है।

*भूतज्वर*—हुलहुल की जड़ को कान में बांधने से भूतज्वर छूट जाता है।

*गलगण्ड*—हुलहुल के पत्ते और लहसन की गुली को पीस कर टिकिया बना कर बांधने से गलगंड फूट जाता है और बह कर के साफ हो जाता है। मगर इससे वेदना बहुत होती है।

*विष विकार*—इसके १७ माशे बीजों को पीस कर खिलाने से सब प्रकार के विष उतरते हैं।

*कर्णशूल*—हुलहुल के रस में सेंधा नमक, शहद और कड़वा तेल मिला कर कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है।

*बवासीर*—इसके बीजों का चूर्ण तीन माशे लेकर उसमें तीन माशे शक्कर मिला कर प्रति दिन खाने से पन्द्रह बीस दिन में वायु की वजह से होनेवाला बवासीर नष्ट हो जाता है मगर पथ्य में घी, खिचड़ी और मट्ठे का ही उपयोग करना चाहिए।

*कृमिरोग*—इसके बीजों का चूर्ण बालकों को तीन रत्ती से दस रत्ती तक और बड़े आदमियों को सोलह से बत्तीस रत्ती तक दिन में दो बार तीन दिन तक देने से और पश्चात् अरण्डी के तेल का जुलाब देने से आंतों में पड़नेवाले गोलकृमि ( Round worm ) निकल जाते हैं और शूल तथा आफरे का नाश होता है।

*कर्णस्राव*—तिल का तेल एक भाग और हुलहुल का रस चार भाग मिलाकर हल्की आंच पर सिद्ध कर लेना चाहिए। कान को पिचकारी से धोकर इस तेल को टपकाने से कान से पीव का बहना बन्द हो जाता है और कुछ दिनों में बहरापन भी मिट जाता है।

*आधाशीशी*—हुलहुल के पत्तों के रस में हुलहुल के बीजों को खरल करके कपाल पर दो तीन दिन तक लेप करने से आधाशीशी की वेदना मन्त्रशक्ति की तरह बन्द हो जाती है।

मात्रा—हुलहुल के बीजों की साधारण मात्रा डेढ़ माशे से तीन माशे तक होती है।

बनावटें—

संखिया अथवा हड़ताल की भस्म—अच्छी प्रकार से शुद्ध किया हुआ संखिया या हड़ताल डेढ़ तोला लेकर उसे कपड़मिट्टी की हुई मिट्टी की हंडिया में रख देना चाहिए। फिर एक सेर आक का दूध और एक सेर हुलहुल का रस दोनों को मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर मावे के समान घनसत्व बना लेना चाहिए। इस घनसत्व में से दस तोला लेकर उस संखिया या हड़ताल पर रखकर उस हंड़िया पर ढकनी लगाकर उसकी सन्धियों को कपड़मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। फिर इस हंडिया को गजपुट में रखकर उस गजपुट में उपले कण्डे भरकर आग लगा देना चाहिए। आग शीतल होने पर उस हंड़िया को निकालकर उसमें से हड़ताल या सोमल की डली जो भस्म रूप में मिलेगी निकाल कर खरल करके शीशी में भर लेना चाहिए।

इस भस्म को यदि संखिया की हो तो चौथाई रत्ती की मात्रा में और हड़ताल की हो तो आधी रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से मलेरिया ज्वर, त्रिदोष, मन्दाग्नि, उपदंश, श्वास, खाँसी और

वात रोगों में बहुत लाभ होता है। यह भस्म बहुत गरम होती है इसलिए इसको देते ही इस पर दूध पिलाना चाहिए और पथ्य में सिर्फ दूध और भात का ही आहार लेना चाहिए। (जगलनी जडी बूटी)

---

# हीरा

*नामः—*

संस्कृत—हीरक, वज्र, दृढ गर्भक, रत्नमुख्य, दधीच्यस्थि। हिन्दी—हीरा। बगला—हिरे। मराठी—हीरा। गुजराती—हीरो। तेलगू—वज्र। फारसी—इल्माश। अंग्रेजी—Diamond लेटिन—Pure carbon Adamas (प्यारे कार्बन आदम्स)।

वर्णन—हीरा नवरत्नों में से एक सर्वप्रधान रत्न होता है। इसका रंग सफेद होता है। संसार के सभी देशों में आदिम काल से एक रत्न की दृष्टि से हीरे की बहुत भारी प्रतिष्ठा रही है। यह वस्तु आकार में जितनी बडी तथा तेज और चमक में जितनी प्रभापूर्ण होगी उसका मूल्य भी उतना ही होगा। संसार में कुछ हीरे तो इतने बड़े और इतने प्रभापूर्ण हैं कि उनके पीछे एक लम्बा इतिहास बन गया है। इनमें से कोहीनूर हीरा बहुत प्रसिद्ध है।

आयुर्वेद के मत से हीरे की चार जातियाँ होती हैं। १ ब्राह्मण, २ क्षत्रिय, ३ वैश्य और ४ शूद्र, ब्राह्मण जाति का हीरा जो एकदम उज्ज्वल सफेद रग का होता है रसायन कार्य्य में उत्तम होता है। क्षत्रिय जाति का हीरा जिसमें सफेद वर्ण होते हुए भी किंचित लाल झाँई होती है बुढ़ापा और व्याधि को नष्ट करनेवाला होता है। वैश्य जाति का हीरा जिसमें कुछ पीली झाँई होती है धनदायक और शरीर को दृढ़ करने वाला होता है और शूद्र जाति का हीरा जिसमें किंचित् काली झाई होती है व्याधि नाशक और अवस्था स्थापक होता है। इसी प्रकार पुरुष, स्त्री और नपुन्सक ये तीन जातिया हीरे की और बतलाई गई हैं। पुरुष जाति का हीरा उत्तम, गोल, रेखा तथा बिन्दु से रहित चमकदार और बडे आकार का होता है। रेखा और बिन्दु से सयुक्त और छः कोनेवाला हीरा स्त्री जाति का होता है। त्रिकोण युक्त और बढ़े आकार का हीरा नपुन्सक जाति का होता है। इनमें पुरुष जाति का हीरा पारे को बाँधने वाला और श्रेष्ठ होता है। स्त्री जाति का हीरा कान्तिजनक और स्त्रियो को सुखकारक होता है और नपुन्सक जाति का हीरा वीर्य विहीन, सत्वशून्य और बेकार होता है।

कहा जाता है कि हीरे का तथा दूसरे नवरत्नों का नवग्रह के साथ विशेष सम्बन्ध है। जो लोग इनमें से किसी भी जाति के सुलक्षण युक्त रत्न को धारण करते हैं वे उस रत्न से सम्बन्धित ग्रह के कोप से बचे रहते हैं। हीरे का सम्बन्ध सम्भवतः शुक्र ग्रह से माना गया है और इस लिए सुलक्षण युक्त उत्तम हीरे को धारण करने वाले इस ग्रह के कोप से बचे रहते हैं।

*गुण दोष और प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से हीरा रसायन, देह को दृढ़ करनेवाला, पौष्टिक, बलदायक और कामोद्दीपक होता

है। यह वर्ण को सुन्दर करनेवाला, सुखदायक तथा वात, पित्त, कुष्ठ, क्षय, भ्रम, कफवात, शोफ, मेद, प्रमेह, भगन्दर और पाण्डु रोग को नष्ट करनेवाला होता है।

हीरा सारक, शीतल, कसैला, मधुर, नेत्रों को हितकारी और वमनकारक होता है इसको धारण करने से पाप और दारिद्रय का नाश होता है।

हीरा वातपित्त कफरोग नाशक, शरीर को वज्र के समान दृढ करनेवाला, लक्ष्मीवर्द्धक तथा शोष, क्षय, भ्रम, भगन्दर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग और सूजन को दूर करनेवाला है।

*अशुद्ध हीरे के दोष*—ऊपर जो हीरे के गुण बतलाये गये हैं वे शुद्ध और भस्म किये हुए हीरे के हैं। अशुद्ध और कच्चा हीरा प्राणनाशक होता है। यह कोढ, पार्श्वशूल, पाण्डु, शरीर में ताप और भारीपन पैदा करता है तथा अनेक प्रकार की पीडा, कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, हृदय और पसली में शूल पैदा करके प्राण का नाश करता है।

*हीरे को शुद्ध करने की विधि*—कुलथी और कोदों के क्वाथ में दोलायन्त्र के अन्दर सात दिन तक स्वेदन करने से हीरा शुद्ध हो जाता है। अथवा हीरे को गर्म करके २१ बार गधे के मूत्र में बुझाने से वह शुद्ध होता है।

*हीरे की भस्म बनाने की विधि*—हींग और सेंधे नमक को कुलथी के क्वाथ में मिलाकर उसमें हीरे को २१ बार गरम कर करके बुझाने से उसकी भस्म हो जाती है। अथवा मेंढे का सींग, सर्प की हड्डी, कछुवे की खोपडी, खरगोश के दाँत और अमलवेत इन सबको थूहर के दूध में महीन पीसकर लुगदी बनाकर उस लुगदी में हीरे को रखकर उस लुगदी को लुहार की भट्ठी में रखकर धौंकनी की आँच देने से हीरे की भस्म हो जाती है।

उपयोग—

हीरे की भस्म को पाव रत्ती से आधी रत्ती तक की मात्रा में खैर की छाल के साथ देने से कुष्ठरोग, अडूसे के रस के साथ देने से कफ और खाँसी, अदरक के रस और शहद के साथ देने से श्वासरोग, चिरायते के साथ देने से ज्वर, गिलोयसत और शहद के साथ देने से प्रमेह, मक्खन के साथ देने से शोष रोग, विदारीकन्द के साथ देने से बहुमूत्र रोग, पीपल और शहद के साथ देने से मन्दाग्नि और पुनर्नवा की जड के साथ देने से शोथरोग मिटता है। मतलब यह कि किसी भी रोग के लिए दी जानेवाली वनस्पति व औषधियों में हीरे की भस्म को मिला देने से वे बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाती हैं।

---

# हेमसागर

*नामः*—

संस्कृत—हेम सागर। हिन्दी—हेम सागर। बङ्गला—हेम सागर। बम्बई—पर्णबीज। तामील—मलकाली। लेटिन—Kalanchoe Laciniata ( कलनचोई लेसिनिएटा )।

वर्णन—यह जख्मेहयात के वर्ग की एक वनस्पति होती है इसकी बड़ी झाड़ी होती है। इसकी ऊँचाई ·९ से लगाकर १·२ मीटर तक होती है। इसके पत्ते मोटे और माँसल होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष के उष्ण तथा तर भागों में तथा बङ्गाल मे बहुत पैदा होती है।

*गुण दोष और प्रभाव—*

इसके रसदार पत्ते व्रण और जखम पर लगाने से बहुत लाभ पहुँचाते हैं। ये जलन को दूर करते हैं और जखम को जल्दी भर देते हैं। एन्सली का कथन है कि मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि व्रण को साफ करके भरने में तथा सूजन को दूर करने में इसके पत्ते बहुत उपयोगी हैं। इनका रस रगड़ और अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाने से भी बहुत लाभ पहुँचाता है। ताजा घाव और रगड पर एक रक्तश्रावरोधक औषधि की तरह इनका उपयोग किया जाता है।

कोकण में इसके पत्तों का रस पित्तजनित अतिसार और पथरी के अन्दर उपयोग में लिये जाता है।

*उपयोग—*

*बिगडे हुए फोडे*—इसके पत्तों का लेप करने से बिगडे हुए फोडे सुधर जाते हैं।

*पित्तशोथ*—इसके पत्तों का लेप करने से पित्तशोथ बिखर जाती है।

*अतिसार*—इसके पत्तों का रस दुगुने पिघले हुए मक्खन में मिलाकर पिलाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

*पथरी*—पथरीवाले को भी अतिसारवाला उक्त प्रयोग लाभ पहुँचाता है।

*अग्नि से जलना*—मोच और अग्नि से जले हुए स्थान पर इसका लेप करने से शान्ति मिलती है।

*ताजे घाव*—ताजे घाव और रगड पर इसके रस का लेप करने से खून का बहना बन्द हो जाता है। किसी घाव पर इसके रस में भिगोये हुए कपडे को बँधा रखने से वह बहुत जल्दी भर जाता है। दूसरी औषधियों से इतना जल्दी नहीं भरता है।

---

## होलोंग

*नाम—*

आसाम—होलोंग। तेगेलाग-हेगेचाक। लेटिन—Dipterocarpus Pilosus (डिप्टेरोकार्पस पिलोसस)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है जो सिलहट, चिटगाव, बरमा और आसाम में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फूल सुजाक, पुरातन प्रमेह और इसी प्रकार की दूसरी मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियों में उपयोग में लिये जाते हैं।

---

# क्षुद्रकान्त फला

नामः—

संस्कृत— क्षुद्रकान्तफला, ऐन्द्री, काकादिनी। हिन्दी—खर इन्द्रायण। मराठी—काटे इन्द्रायण। काठियावाड— कढारी इन्द्राण। गुजराती—कण्टाला इन्द्राण। लेटिन—Cucumis Prophitarum (क्यूक्यूमिस प्रोफिटेरम)।

वर्णन —यह एक लता होती है इसकी बेलें बहुत पतली और छोटी होती हैं। इसके फल लम्बगोल और कांटेवाले होते हैं। पकने पर ये पीले रंग के हो जाते हैं और इन पर सफेद और हरी धारियाँ रहती हैं। यह वनस्पति सिन्ध, बलूचिस्तान, मारवाड, राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति वामक और विरेचक होती है। इसकी जड और काली मिरचों को मिलाकर अजीर्ण, और खट्टी डकारों में दिया जाता है।

बलूचिस्तान में इसकी सूखी जड का चूर्ण चार माशे की मात्रा में दही में मिलाकर विरेचन के लिए दिया जाता है। लासवेला में इसका फल दूध के साथ ज्वर को दूर करने के लिए दिया जाता है।

---

# क्षीर काकोली

नाम.—

संस्कृत—क्षीर काकोली, पयस्या, महावीरा, पयस्विनी इत्यादि। हिन्दी—क्षीर काकोली।

वर्णन—यह आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक औषधि है इसका कन्द सतावरी के समान होता है। इसमें एक प्रकार का सुगन्ध युक्त दूध निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से क्षीर काकोली वीर्यवर्द्धक, स्तनों में दूध बढानेवाली, हल्की, कामोद्दीपक, अवस्था स्थापक, पाक और रस में स्वादिष्ट, बलकारक, शीत वीर्य्य और जीवनदायक होती है।

❀ समाप्त ❀

# बड़ी विषय-सूची

इस विषय सूची में वनौषधि-चन्द्रोदय के दसों भागों की सब औषधियों का नाम—सस्कृत, हिन्दी, बङ्गला, गुजराती, मराठी, उर्दू, यूनानी इत्यादि सब भाषाओं में अकारादि क्रम से दिये गये हैं। हर एक नाम के आगे जिस भाषा का वह नाम है उसका सकेत अक्षर ब्रेकेट में दे दिया गया है। सस्कृत के लिए [ सं. ] हिन्दी के लिए [ हिं. ] बङ्गला के लिए [ ब. ] गुजराती के लिए [ गु. ] मराठी के लिए [ म. ] उर्दू के लिए [ उ. ] और यूनानी के लिए [ यू. ] संकेताक्षर दिये गये हैं। अकारादि क्रममें सिर्फ़ पहले का अक्षर मिलाया गया है। आगे के अक्षर नहीं मिला सके हैं। इस प्रकार इस बृहद् सूचि में प्रायः सब भाषाओं के नाम आगये हैं। जिससे पाठकों को देखने में बहुत सुविधा होगी। —लेखक

## ( अ )

# ( क )

## ( ख )

# ( ग )

## ग

## (घ)



## (च)

## ( छ )

## ( ज )

## ( ढ )



## ( त )

## ( थ )

## ( द )

## ( ध )



## ( न )

## ( प )

## ( फ )

## ( ब )

## ( भ )

## ( य )



## ( र )

## ( ल )

## ( व )

## ( श )

## ( स )

## ( ह )